सद्ज्ञान ग्रन्थ माला का सत्ताईसवां पुष्प —

ब्रह्म-विद्या का रहस्योद्घाटन

—श्रीराम शर्मा आचार्य।

ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन

लेखक—

पं० श्रीराम शर्मा, आचार्य

प्रकाशकः—

"अखंड-ज्योति" कार्यालय,

मथुरा
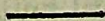
प्रथमवार } सम्वत् २००० वि० { मूल्य ।=)

पात्रता के अनुसार-आध्यात्म साधना।

स्वामी विवेकानंद ने एकबार अमेरिकन लोगों के सामने कहा था—"मेरे अमेरिकन मित्रो ! कदाचित तुम यह कहो कि स्वामी जी ! आप सात समुद्र पार करके वेदान्त का उपदेश हमें देने क्यों आये हैं, क्या भारतवर्ष को इस सुनहले ज्ञान की आवश्यकता नहीं है ? इस प्रश्न का उत्तर मैं यही दे सकता हूँ कि वेदान्त धर्म का सच्चा अधिकारी और पात्र वही हो सकता है जो सामर्थ्यवान हो, ऐश्वर्य सम्पन्न हो, लक्ष्मी जिसके चरण चूमती हो। तुम्हारा अमेरिकन जन समाज अटूट सांसारिक वैभव का स्वामी है, तुम्हारी संग्रह शीलता बढ़ी चढ़ी है। इस लिए त्याग मूलक वेदान्त की आवश्यकता भी तुम्हें ही है और तुम्हीं इस वेदान्त के धर्म अधिकारी हो। मेरा हिन्दुस्तान भाग्य के फेर से और अपनी अकर्मण्यता, पौरुषहीनता के हेतुसे आज दाने दाने को मोहताज हो रहा है। उसे रोटियों के लाले हैं। ऐसे देशको मैं त्याग धर्म की क्या शिक्षा दूं, अपने देशवासियों से तो मैं यही कहूँगा कि प्यारे, कमाओ, खाओ और धन संग्रह करो।"

आध्यात्मवाद सब को एक लाठी से नहीं हांकता, उसकी शिक्षाऐं अधिकारी भेद के अनुसार अलग अलग प्रकार की हैं। ब्रह्माजी ने भोग लिप्त देवताओं को इन्द्रिय दमन का, धनवान वैश्यों को दान का, और बलवान असुरों को दया का उपदेश दिया था। जिसके पास जैसी मनोभूमि और जैसा जैसे साधन हैं उसे उसी के अनुसार आध्यात्मिक साधना की व्यवस्था की गई है इसीलिए एक ही तत्व अनेक शाखा प्रशाखाओं में बटा हुआ दृष्टि गोचर होता है।

पहिला पाठ

विचारों की पवित्रता और सुव्यवस्था के लाभ !

मानव शक्तियों के दो भाग हैं एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म अथवा एक दृश्य दूसरा अदृश्य। दृश्य शक्तियां स्पष्ट और प्रकट होती हैं, बलवान मनुष्य का शरीर मोटा ताजा हट्टा कट्टा; गठा हुआ और भारी साफ दिखाई पड़ता है, दिमागी बल खुद तो आंखों से दिखाई नहीं पड़ता पर उसे पहचाना आसानी से जा सकता है, डाक्टर, वकील, पंडित, जज, अध्यापक, उपदेशक छिपते नहीं ये योग्यताऐं थोड़ी खोज करने पर प्रकट होजाती हैं; इसी प्रकार शिल्प, गीत, वाद्य, व्यापार. कला कौशल आदि की योग्यताऐं कार्यों को देखकर या पूछकर जानी जा सकती हैं। मस्तिष्क सहित शरीर के अंग प्रत्यंगों की योग्यताऐं स्थूल या दृश्य कही जाती हैं वे प्रकट हैं और आसानी से उनका परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

सूक्ष्म शक्तियां वे हैं जो आंखों से दिखाई नहीं पड़ती और न मोटी बुद्धि से पहचानी जाती है, स्थूल शरीर दिखाई पड़ता है इसलिए उसकी शक्तियां भी दिखाई देतीहैं किन्तु सूक्ष्म शरीर अदृश्य है इसलिए उसकी योग्यताऐं भी अदृश्य ही होती हैं, उनका पता सूक्ष्म परीक्षण द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह चार अंग सूक्ष्म शरीर के माने गये हैं, पाठकों की सुविधा के लिये हम इनका विभाजन दो में

किये देतेहैं एक विचार दूसरा विश्वास। इस युग के मनोविज्ञान विशारद दो भागों में ही उसे बांट रहे हैं डाक्टर फ्राइड प्रभृत विद्वानों ने अन्तः चेतना के दो खंड किये हैं एक बाह्यमन (Objective mind) दूसरा अन्तर्मन (Subjective mind) संख्या में कमी होजाने से सूक्ष्म शरीरके संबंधमें जानकारी प्राप्त करना पाठकोंको अधिक सरल होगा। स्थूल शरीरकी विवेचनाके लिए शरीर शास्त्र, स्वास्थ्य शास्त्र, नीति शास्त्र मौजूद हैं। दिमाग को शिक्षित करने के लिए अध्यापक, उपदेशक, कला कौशल सिखाने के लिए शिक्षक, शरीर को बलवान एवं निरोग बनाने के लिए चिकित्सक, मौजूद हैं शारीरिक उन्नति का दायरा बहुत विस्तृत हो गया है और उसकी शोध, विवेचना एवं शिक्षा दीक्षा के लिये अनेक प्रयत्न हो रहे हैं।

जिस प्रकार दृश्य शरीर संबंधी अनेकानेक छोटी बड़ी समस्याओं को सुलझाने का सुविस्तृत विज्ञान मौजूद है उसी प्रकार अदृश्य शरीर की गुत्थियों को समझने और सुलझाने के लिए जो शास्त्र है उसे आध्यात्मवाद कहते हैं। हमारे बुद्धिमान पूर्वजों ने चिरकालीन अनुसंधान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि वाह्य परिस्थितियों पर सुख दुख या उन्नति अवनति का होना निर्भर नहीं है वरन् उनका मूल कारण आन्तरिक योग्यताओं में निहित है। एक मनुष्य सब प्रकार की सुख सामिग्री होते हुए भी दुखी रहता है, उन्नति करने योग्त परिस्थिति में भी नीचे ही गिरा रहता है, उत्तम स्वभाव के लोगों को भी शत्रुता करता हुआ पाता है इसके विपरीत दूसरा मनुष्य अभाव में भी सुख का अनुभव करता है, बुरी परिस्थितियों में भी आगे बढ़ जाता है और मूर्ख एवं दुष्ट लोगों को भी अपने लिए लाभदायक बना लेता है। इसका कारण आन्तरिक योग्यता अयोग्यता है। शारीरिक स्थिति अच्छी होने पर दूध घी बल-

वर्धक सिद्ध होते हैं किन्तु आंतें कमजोर होनेपर वे ही अतिसार, कोष्ट बद्ध या अजीर्ण उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार आन्तरिक स्थिति अच्छी होने पर साधारण परिस्थितियां भी सुखदायक एवं उन्नति में सहायक सिद्ध होती हैं और भीतरी खोट होने पर भले अवसर भी दुखदायी अनुभव होते हैं।

संसार में जिन सुखों की इच्छा की जाती है वास्तव में वे किसी अन्य पदार्थ में नहीं वरन् अपने अन्दर ही हैं, उनकी प्राप्ति अपना दृष्टिकोण सुधार लेने से ही संभव है। इस महान् सत्य को भली प्रकार परख लेने के उपरान्त मानव दुखों में वृद्धि करने की इच्छा से तत्वदर्शी ऋषियों ने आध्यात्म शास्त्र की विशद विवेचना की है। पिछले कुछ समय में भौतिक विज्ञान वादियों ने आत्मा के अस्तित्व से इनकार करके आध्यात्म शास्त्र की उपयोगिता को अस्वीकार कर दिया था पर कुछ अधिक खोज करने पर उन्हें अपनी भूल प्रतीत होगई और 'मनोविज्ञान शास्त्र' के नाम के आध्यात्मवाद का नवीन संस्करण करना पड़ा। अब मनोविज्ञान शास्त्र उन्नति करता जा रहा है और वह उन्नति निरंतर प्राचीन आध्यात्मवाद की पुष्टि की ओर ही बढ़ती जा रही है।

विचार और विश्वास इन दो विभागोंमें विभाजित करते हुए आन्तरिक शरीर का कुछ परिचय पाठकों को पिछले पृष्टों में कर चुके है। आध्यात्मवाद की सारी रचना इन्हीं दो तथ्यों पर अवलम्बित है। दृष्टिकोण का निर्माण और साधना यह दो कार्य प्रणालियां विचार और विश्वासों को पुष्ट करने वाली हैं। स्वाध्याय, कथा श्रवण, पुस्तक पाठ, उपदेश ग्रहण, सत्संग की व्यवस्था, विचारों को परिमार्जित करनेकेलिये है और तीर्थयात्रा, यज्ञ, दान, संध्या, पूजा, जप, अनुष्ठान की व्यवस्था विश्वासों को दृढ़ बनाने के लिये है। दृश्य जगत में शरीर और मस्तिष्क

को पुष्ट करने के लिए नाना प्रकार के आयोजन हैं उसी प्रकार विभिन्न तरह की आध्यात्मिक प्रक्रियाऐं विचार और विश्वासों को शक्ति सम्पन्न बनाने के उद्देश्य से निर्मित हुई है।

आपने रेडियो यंत्र अवश्य देखा होगा। दिल्ली. कलकत्ता बम्बई, लन्दन, न्यूयार्क आदि स्थानों पर उच्चारण किये हुये शब्द पलक मारते मारते यहां तक दौड़ आते हैं। रेडियो यंत्र अपनी बिजली के कारण उन शब्दों को पकड़ कर मशीन के भीतर ले जाता है और उन्हें ज्यों का त्यों सुना देता है, नाच गाने, बात चीत, हँसी रोना आदि सब ध्वनियां ज्यों की त्यों सुनाई देती हैं। बेतार के तार के निर्माता मारकोनी ने मालूम किया था कि अखिल ब्रह्माण्ड में 'ईथर' नामक एक महातत्व व्याप्त है उसमें शब्दों की लहरें बहती रहती हैं। जैसे किसी तालाब में पत्थर फेंकने पर पानी उछलता है और फिर वह लहरों का रूप धारण करके वहां तक चलता है जहां तक कि पानी का छोर होता है समस्त ब्रह्माण्ड में 'ईथर' तत्व व्याप्त हैं, उसमें शब्दों की लहरें चलती हैं और वह बड़ी तीव्र गति से एक सैकिण्ड में हजारों मील की चालसे बहती रहती हैं। इतना जान लेने के बाद मारकोनी को एक आधार मिल गया उसने दो प्रकार के यंत्र बनाये एक तो ऐसा जो शब्द के साथ में कुछ विशेष प्रकार के विद्युत परमाणु घोल देता था दूसरा वह जो उस प्रकार के विद्युत परमाणुओं को अपनी शक्ति से पकड़ लेता था। मार्कोनी का कहना था कि इस कार्य में कोई बहुत बड़ा आश्चर्य नहीं है, बेतार के तार का यंत्र भी कोई बहुत कीमती चीज नहीं है, यह सब काम बहुत मामूली कल पुर्जों से होता है आश्चर्य जनक खोज केवल ईथर तत्व और उसकी क्रियाशीलता के बारे में जानकारी प्राप्त करने की थी।

यह तो हुई जड़ रेडियो की बात। अब चैतन्य रेडियो

की बात सुनिए—यह मनुष्यका मस्तिष्क है। यह चैतन्य रेडियो जड़ रेडियो की अपेक्षा कई दृष्टियों से उत्तमहै। मामूली रेडियो दूसरी जगह के शब्दों को सुना सकता है पर उसके द्वारा दूसरी जगह खबर नहीं भेजी जा सकती किन्तु मनुष्य का मस्तिष्क दोनों काम करता है, टेलीफून के द्वारा जैसे आवाज को कहा जाता है और सुना भी जाताहै इसीप्रकार मस्तिष्क द्वारा अखिल ईथर तत्व में बहने वाले विचारों को ग्रहण भी किया जाता है और अपने विचारों को उसमें फेंका भी जाता है। मस्तिष्क विचारों का यंत्र है, इसमें अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं और वे ढेला फेंकने से पानी में उत्पन्न होने वाली लहर की तरह विश्व व्यापी अखिल ईथर तत्व में बहने लगते हैं और चारों ओर फैल जाते हैं। वैज्ञानिकों ने विचारों की लहरों को देखने का यंत्र निकाल लिया है यह फोटो खींचने के कैमरे की तरह है, एक नव युवक किसी सुन्दरी के चिन्तन में डूबा हुआ था उसके मस्तिष्क के पास यंत्र रखकर फोटो लिया गया तो उसी सुन्दरी की तस्वीर खिंच गई। इसी प्रकार क्रोध, क्षोभ, शान्ति प्रेम, विरह, खुशी, निराशा आदि भावनाओं के फोटो खिंचने लगे हैं। रंग और आकृतियों की भिन्नता के कारण उन विचारों को साफ साफ पहचान लिया जाताहै, फोटो को देखकर यह भली भांति प्रकट हो जाता है कि वह व्यक्ति क्या सोच रहा था।

गर्मी पाकर पानी भाप बनता है, यह भाप हवा में इधर उधर उड़ती हुई अन्य भाप के साथ मिलकर बादल का रूप धारण करती है। इसी प्रकार मस्तिष्क में से निकले हुए विचार ईथर में उड़ते हैं और लोगों के छोड़े हुए अपने समान अन्य विचारों के साथ मिलकर एक प्रकार के बादल का रूप धारण कर लेते हैं। यह विचार बदलियां इधर उधर उड़ती फिरती हैं

जैसे ही कोई व्यक्ति कहीं उसी प्रकार के विचार करता है और उस विचार में कुछ सोचता है वैसे ही मस्तिष्क में एक आकर्ष शक्ति उत्पन्न होती है और उसके खिंचाव से वे उड़ती हुई विचा बदलियां उस मनुष्य के पास दौड़ आती है। कोई आदमी कि बात को सोचता है तो उसे उस संबंध में अनेक नई बातें मालू होने लगती हैं जितना गहरा सोच विचार किया जाता है उत ही ज्ञान अपने आप मिलता जाता है। यह नई बातें कैसे मालू हुईं ? बात यह है कि जिसने अपने मस्तिष्क को अधि आकर्षण शक्ति युक्त बनाया उसके पास बहुत से उसी प्रकार विचार खिंच आये और उसने उन्हें अपना लिया। सोचने प जो नई नई बातें मालूम होती हैं वह कितने ही मनुष्यों विभिन्न अवसरों पर सोची हुई चीजें होती हैं, मस्तिष्क उन पकड़ लेता है और ख्याल करता है कि मेरी समझ में यह न बात आगई। मस्तिष्क में जहाँ विचार फेंकने की शक्ति है वह ऐसी भी शक्ति पर्याप्त मात्रा में मौजूद है जो अपनी इच्छि विचार सामिग्री को ईथर में से खींच सके।

रेडियो एक सावधानी से काम लेने की वस्तु है। जिन चीजों की सावधानी रखना आवश्यक है उनके लिए लाइसेन्स लेना पड़ता है, जहर, बन्दूक, बारूद, हथियार, नशीली चीजें, रेडियो, इन सबका लाइसेन्स लेना पड़ता है और सरकार को विश्वास दिलाना पड़ता है कि इन वस्तुओं का सदुपयोग करेंगे, जो इन चीजों का दुरुपयोग करता है उसका लाइसेन्स जब्त कर लिया जाता है और सजा भुगतनी पड़ती है। जर्मनी जापान से भेजे हुए खराब समाचारों को फैलाने में रेडियो का उपयोग करें तो सरकार लाइसेन्स जब्त कर लेगी और दण्ड देगी, इसीप्रकार मस्तिष्क रूपी बहुमूल्य और अपार शक्ति वाले रेडियो का ईश्वर ने आपको लाइसेन्स दिया है उसका ठीक ठीक उपयोग करने के

लिए पूरी सावधानी रखनी चाहिए अन्यथा अनर्थ हो जायगा और भारी हानि उठानी पड़ेगी।

आप जैसे भले बुरे विचार करते हैं वे चिरकाल तक जीवित रहते हैं और अपनी शक्ति से दूसरों को प्रभावित करते रहते हैं, यदि आप ईर्षा, द्वेष, क्रोध, घात—प्रतिघात, छल कपट के विचार किया करते हैं तो उनकी जो तरंगें बनेंगी वे संसार में अनेक लोगों को उसी दशा में उकसावेंगी। मान लीजिए एक मनुष्य क्रोध कर रहा है उसी समय आपके क्रोध युक्त विचार उसके पास जा पहुंचे दोनों के मिल जाने से उसका क्रोध उमड़ पड़ा और आवेश में आकर उसने किसी की हत्या कर डाली, तो समझ लीजिए ईश्वर के यहां आप भी उस हत्या में भागीदार ठहराये जावेंगे। इसी प्रकार यदि दया, प्रेम, उदारता, दान, ईमानदारी, सेवा के विचार करते हैं तो उनकी तरंगें किसी न किसी को प्रभावित करेंगी ही, धर्म के थोड़े विचार किसी के मनमें उठ रहे थे उसी समय आपके विचारोंने उसे और अधिक उत्साहित किया, उस उत्साह में उसने जो धर्म कार्य किया है, उसमें से आपको भी हिस्सा मिलेगा। शरीर से जो भले बुरे काम किए जाते हैं उनका फल मिलता है, इसी प्रकार मन से जैसे विचार किये जाते हैं उनका भी परिणाम भुगतना पड़ता है। कई महात्मा शरीर से अधिक सेवा कार्य नहीं करते परन्तु विचार विज्ञान के गुप्त रहस्य को समझकर आध्यात्मिक बल के साथ उच्च कोटि की पवित्र विचार धारा प्रवाहित करके मौन रूप से संसार की बड़ी भारी सेवा करते हैं। यदि आप विचारों को सात्विक बना लेते हैं, दुर्भावनाओं को हटा देते हैं, अपने आपको सच्चा, ईमानदार, भला, निष्कपट, सेवा भावी, परोपकारी, न्याय परायण, सत्यनिष्ठ बना लेते हैं, दूसरों के लिए हितचिन्ता, कल्याण कामना, सद्बुद्धि रखते हैं तो निस्संदेह

एक महान यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं। यह अदृश्य साधना अत्यंत पुण्यमय है, विचारों का पवित्र रखना, बुरी भावनाओं को भीतर प्रवेश न करने देना ऐसा पुनीत कर्म है जिसकी तुलना में बड़ी बड़ी खैरातें तुच्छ गिनी जायेंगी।

आध्यात्मवाद विचारों की शक्ति के इस महान् रहस्य का उद्घाटन करता है और बताताहै कि पुण्य और पापका सर्वोच्च केन्द्र अपना मस्तिष्कहै। बाहरी कार्य अच्छे करता हुआ दिखाई दे किन्तु उसका मन नीच वासनाओं से भर रहा हो तो उन अच्छे कर्मों का तात्विक दृष्टि से कुछ भी महत्व नहीं है इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति पवित्र भावना से, सदिच्छा से ऐसा काम करता है जो देखने में पुण्य नहीं है तो भी तत्वतः वह पुण्य ही गिना जायगा। एक गरीब आदमी जो जीवन भर में संभव है एक दो रुपया भी दान न कर पाया हो यदि पवित्र अन्तःकरण वाला है तो दंभ एवं स्वार्थ वृत्ति से लाखों रुपया दान करने वाले धनी की अपेक्षा श्रेष्ठ है, परलोक में उस गरीब की कमाई ही अधिक भारी बैठेगी।

ध्यान को एकाग्र करना, चित्त को रोकना, मन का संयम यह सब विचार वृत्तियों को कुपंथ पर जानेसे रोक कर पवित्रता में तल्लीन रखने के लिये हैं। उससे जो असाधारण लाभ होते हैं वे पाठकों के सामने हैं, विचारों की पवित्रता से (१) अपार मात्रा में पुण्य संचय होता है (२) विचारोंके अनुसार स्वभाव और कार्य भी अच्छे बनते हैं (३) संसार की नश्वरता समझ में आने से वैराग्य भाव उत्पन्न होता है और मानसिक दुखों का अन्त होजाता है (४) अच्छे विचारों से आत्म संतोष रहता है इन लाभों के कारण लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के आनन्दों में वृद्धि होती है। क्रोध, चिन्ता, शोक, उद्वेगनता आदि मानसिक आवेशों से दिमाग मूर्छित रहता है, दूषित विचार

धारा के कारण चित्त में हर घड़ी भय आशंका भय, चिन्ता व्याकुलता के उफान आते रहते हैं जिससे दिमाग स्थिर नहीं रह पाता ऐसी दशा में किसी विषय पर ठीक ठीक निर्णय करने की योग्यता उसमें नहीं रहती। कल्पना शक्ति, धारणा शक्ति, स्मरण शक्ति, निर्णय शक्ति, विवेचन शक्ति सभी अस्त व्यस्त होजाने के कारण मनुष्य अर्ध विक्षिप्त दशा को पहुंच जाता है, इस प्रकार के मनुष्यों का जीवन अपने लिए और दूसरों के लिए आनंद-दायक नहीं हो सकता।

आवेश रहित मस्तिष्क ही आनंदमय जीवन का पथ प्रदर्शन कर सकता है। स्थिर और स्वस्थ चित्तसे ही भीतरी और बाहरी समस्याओं का ठीक स्वरूप समझा जा सकता है और उन्हें सुलझाया जा सकता है, सफलता के पथ बढ़ने के लिए धैर्य, साहस, उत्साह, दृढ़ता, लगन, परिश्रम एवं प्रतिज्ञा की आवश्यकता होती है. यह सद्गुण स्वस्थ चित्त वाला ही अपने में रख सकता है, विकारों की उत्तेजना क्षण क्षण में जिसे अस्थिर बनाए रहती है उस अनिश्चित व्यक्ति में इन गुणों का टिकना मुश्किल है, वह बार बार इधर उधर ढुलता है, नियत लक्ष पर बढ़ने में मानसिक आवेश बार बार विक्षेप उत्पन्न करते हैं और वह सफलता से वंचित रह जाता है।

महर्षि पातंजलि ने 'चित्त वृत्तियों के निरोध' को योग कहा है। इस निरोधका तात्पर्य यह है कि सांसारिक अनुभूतियों के कारण जो मानसिक आवेश उत्पन्न होते हैं उनको काबू से बाहर न होने दिया जाय, ऐसा न हो कि क्रोध, शोक, लोभ आदि इतना आधिपत्य होजाय कि विवेक बुद्धि का उनके आगे कुछ वश न चले और इन आवेशों के वशीभूत सारे कार्य होने लगें इस प्रकार जो कार्य होंगे वे निश्चय ही बड़े दुखदायी और क्लेशकारक होंगे। यदि आवेशों पर नियंत्रण रखा जाय, उनको

जितना चाहें उतना बढ़ने दें और जब चाहें तब रोक देने की योग्यता अपने अन्दर हो, घोड़े की लगाम की तरह आवेशों का शासन हाथ में रहे तो ऐसा सुखकर परिणाम निकल सकता है कि-जीवन में चारों ओर आनंद ही आनंद उमड़ पड़े।

राजा जनक, तुलाधार वैश्य, आदि अनेक साधारण गृहस्थ उच्चकोटि के योगी हुए हैं और अब भी हैं, इन गृहस्थों से पढ़े बड़े सन्यासियों को शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता होती है जैसे श्री शुकदेवजी ने राजा जनक से ब्रह्म विद्या की शिक्षा प्राप्त की थी। मनको बश में करने का और कुछ प्रयोजन नहीं है यह समझना भूल है कि मन सदैव एक ही बात को सोचता रहेगा एक ही स्थान पर स्थिर रहेगा। कुछ क्षणों के लिए ऐसी स्थिति प्राप्त की जा सकतीहै पर एक ही स्थान पर मन रहे ऐसा नहीं हो सकता, उसकी रचना ही ऐसी हुई है, कि विभिन्न दिशाओं में उसका दौड़ना आवश्यक और अनिवार्य है। मन का निरोध यह है कि सांसारिक घटनाओं के प्रभाव की उत्तेजना से दिमाग को बेकाबू न होने दिया जाय, कैसी ही विपत्ति आई हो, कैसी ही अप्रिय परिस्थित हो पर मानसिक स्थिरता को कायम रखा जाय और जो कुछ कहा जाय या किया जाय आवेश पूर्वक नहीं वरन् भली प्रकार सोच समझ के साथ, विवेक बुद्धि के साथ हो।

आंतरिक शरीर की स्वस्थता, पुष्टि और उन्नतिका पहला मार्ग यह है कि विचारों को भली भांति नियंत्रण में रखा जाय ठगी, बेईमानी, शोषण, हिंसा, अन्याय, अत्याचार, धोखा आदि पाप पूर्ण इच्छाऐं मनमें न आने दीजांय, काम, क्रोध,लोभ,मोह, शोक के आवेशों को काबू से बाहर न जाने दिया जाय, तो यह मानसिक नियंत्रण अनेकानेक गुप्त प्रकट, दृश्य, अदृश्य मार्गों से जीवन के सुखों में आशातीत वृद्धि कर सकता है। यो

साधना—आनंद वृद्धि के लिए है, यह प्रत्यक्ष ही प्राप्त होता है। सुख का उद्‌गम स्थान मन है, मन को सुखदायक स्थिति में रखना यही योग है, चित्त वृत्तियों के ऊपर काबू रखने से, विवेक बुद्धि के शासन में मन के आवेशों को रखने से, वही आनंददायक स्थिति प्राप्त होती है, जिसका रसास्वादन योगीजन करते हैं।

आप बाहरी शरीर को उन्नतिशील बनाना चाहते हैं, उस उन्नति की प्रेरणा भीतरी शरीर की स्वस्थता द्वारा मिलती है। विचारों की पवित्रता और सुव्यवस्था आन्तरिक स्वास्थ्य का प्रथम मार्ग है इससे आप अपने मस्तिष्क के ऊपर काबू पाने का प्रयत्न करिए, मनको वश में करिए, ऐसा करने से निस्संदेह अपना बाह्य जीवन को आनंदमय बना सकेंगे।

दूसरा पाठ

अष्ट सिद्धि, और नव ऋद्धि की वास्तविकता

विचारों की महत्ता के बारे में पाठक पिछले अध्याय में कुछ जानकारी प्राप्त कर चुके हैं अब आन्तरिक शरीर के दूसरे भाग—विश्वास—के बारे में कुछ जानना चाहिए। बाह्य मन में जो विचार रहते हैं वे हलके और अस्थिर होते हैं, थोड़ा सा आघात लगने पर वे बदल जाते हैं किन्तु विश्वास की जड़ गहरी होती है, वे सहसा बदलते नहीं। न छूटने वाली आदतों में विश्वास की दृढ़ता का कुछ परिचय पाया जाता है; तर्क और प्रमाणों से बाह्य मस्तिष्क के विचार तो बदल जाते हैं परन्तु विश्वासों के ऊपर उनका इतना ही प्रभाव पड़ता है जितना चिकने घड़े के ऊपर पानी का। जिनका ईश्वर के ऊपर प्रगाढ़ विश्वास है उनके सामने यदि यह साबित कर दिया जाय कि "ईश्वर नहीं है" तो भी वे अपना मत न बदलेंगे। अन्ध-विश्वासी वे होते हैं जो बुद्धि की परवा न करके किसी कारण वश अन्तर्मन में जमी हुई धारणा पर ही अड़े रहते हैं, किसी न किसी विषय में थोड़ा बहुत अन्ध विश्वास सभी में पाया जाता है।

कुछ विश्वास तो ऐसे होते हैं जो वंश परम्परा के कारण, बालकपन की परिस्थितियों के कारण, सांसारिक घटनाओं के प्रभाव के कारण, अज्ञात रूप में भीतरी मन में घर कर जाते हैं, इच्छा पूर्वक इन्हें नहीं बनाया जाता तो भी किसी प्रकार वे बन जाते हैं, खेत में कुदरती रूप से उपज खड़े हुये पौधों की

ांकि इनमें से कुछ अच्छे भी हो सकते हैं कुछ बुरे भी, परन्तु
ार उसके परिणाम भी हो सकते हैं। दूसरी प्रकार के विश्वास
ो हैं जो इच्छा पूर्वक अत्यंत प्रयत्न के साथ जमाये जाते हैं।
जंगली झाड़ झंखाड़ तो यों ही उपजते और बढ़ते रहते हैं पर
यदि बढ़िया पुष्प वाटिका लगानी हो, सेवों का बाग लगाना हो
तो उसके लिए भारी मेहनत करनी पड़ती है, चौकसी, खाद,
पानी, निराई, खुदाई आदि की व्यवस्था पर सारा ध्यान एकत्रित
करना पड़ता है। इच्छा पूर्वक लाभदायक विश्वासों को जमाने
में ऐसा ही घोर परिश्रम होता है इस परिश्रम को आध्यात्मिक
भाषा में "साधना" कहते हैं। जितने भी कर्म काण्ड, व्रत, पूजन,
अनुष्ठान, जप, तप हैं वे सब इस एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते
हैं, जप अनुष्ठान का कोई तात्कालिक लाभ न होते हुए भी
उनका महत्व विश्वासों को दृढ़ बनाने में है।

विश्वास एक शक्ति उत्पादक यंत्र (डायनमो) है, विश्वास
बल के सहारे मनुष्य बड़े बड़े कठिन कार्यों को करने के लिए
खड़ा हो जाता है और असंभवको संभव बना देता है। विश्वास
के लिए लोग बड़ी बड़ी कुर्बानी करते हैं, धन ऐश्वर्य का त्याग
करते हैं और अवसर आने पर प्राण तक का उत्सर्ग कर देते
हैं। देश जाति के लिए, धर्म के लिए, प्रतिशोध के लिए, असंख्य
व्यक्तियों ने प्राणों की भेंट चढ़ाई हैं बड़े बड़े त्याग किये हैं और
हँसते हँसते आपत्तियों के पर्वत शिर पर उठाये हैं, इतनी प्रचंड
प्रेरणा और किसी कारण नहीं, केवल सुदृढ़ विश्वासों से ही
उत्पन्न होती है। विश्वास का शरीर पर आश्चर्यजनक प्रभाव
पड़ता है। एक बार योरोप के एक नगर में किसी अपराधी को
मृत्यु की सज़ा दी गई, डाक्टरों ने इस अपराधी को अपनी क्रिया
द्वारा मार डालने की स्वीकृति लेली। अपराधी को एक मेज पर
लिटा कर उसकी आँखों से पट्टी बांध दी गई और गले के पास

एक छोटी पिन चुभो दी गई जिससे एक दो बूँद खून निकल आया उसी जगह पर ऊपर से एक पतली नली द्वारा पानी बहाया गया जो उसकी गरदन पर होता हुआ मेज के नीचे टप टप गिरने लगा। अपराधी को विश्वास कराया गया कि उसकी नस काटदी गई है जिसमें होकर खुन बह रहाहै, उसने डाक्टरों की बात पर विश्वास कर लिया और केवल दस पांच बूँद खून निकलने पर भी भय के कारण वह कुछ ही देर में मर गया। स्विटजर लेण्ड के बड़े अस्पताल में एक सांपके काटने का मरीज दाखिल हुआ बहुत दवा दारू करने पर भी वह मर गया। डाक्टरों ने लाश की परीक्षा की तो उसमें रत्ती भर भी विष न निकला। रोगी को मामूली खुरसट लगने पर सर्प के काटने की आशंका हुई और उसीके भय से वह मर गया। इसी प्रकार एक मरीज ऐसा मरा जो यह कहता था कि मैं गलती से दवा के बदले जहर पी गया हूँ। उसके मरने पर जांच की गई तो पता चला कि उसने दवा को ही पिया था, शीशी पर गलतीसे 'जहर' का लेबिल लग गया था।

एक व्यक्ति अंधेरी अर्ध रात्रि में मरघट में लोहे की कील गाड़ आने के लिये शर्त बदकर तैयार हुआ, वहां जाकर जल्दीमें उसने अपने कुर्ते के साथ जमीन में कील ठोंक दी, उठा तो कुर्ता कील ने पकड़ा हुआ था उसने समझा मुझे भूत ने पकड़ लिया है, भय के साथ एक चीख निकली और वह तुरन्त ही मर गया। महामारी में जितने आदमी बीमारी की भयंकरता से मरते हैं उससे तीन गुने डरके मारे मर जाते हैं, रोग का थोड़ा सा प्रकोप होने पर, दूसरों की मृत्यु की भांति अपनी मृत्यु की आशंका करके घबरा जाते हैं और वह घबराहट पूर्ण भय ही उनकी मृत्यु का कारण बन जाता है। इस प्रकार विश्वास के

भले बुरे चमत्कार पग पग पर दिखाई देते हैं, साधारण को असाधारण बना देना सुदृढ़ विश्वास का ही काम है।

राज योग की साधनाओं द्वारा पुराने अव्यवस्थित विश्वासों को हटाकर उनके स्थान पर इच्छानुकूल विश्वास जमाये जाते हैं। बहुत काल तक सत्कार पूर्वक जो क्रिया शरीर द्वारा होती रहती है वह धीरे धीरे संस्कार का रूप धारण करती जाती है, वाह्यमन में से गहरे उतर कर वे विचार अन्तर्मन में अपना घर बना लेते हैं, यही विश्वास है। नमाज, पूजा, संध्या, प्रेयर, प्रतिदिन बार बार करने के नियम का यही तात्पर्य है। सरकारी अधिकारी एक बार की हुई फरियाद को सुन लेते हैं और उसपर जैसा कुछ फैसला करना होता है कर देते हैं फिर कोई कारण नहीं कि एक ही अर्जी को दिन में कई कई बार, वर्षों तक ईश्वर के दरबार में पेश करते रहने की आवश्यकता हो। प्रार्थना का तात्पर्य ईश्वर से कुछ कहना या मांगना नहींहै, वह तो बिना मांगे और बिना कहे भी घट घट की जानता है और अपने नियमानुसार यथावत् व्यवस्था करता है, मांगने न मांगने का उसके ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, कई कई बार सदैव पूजा, नमाज करते रहने का अभिप्राय ईश्वर के आस्तिक को मानना, अपनी वास्तविक आवश्यकता का बार बार स्मरण करना, अपने का साधक धर्माचरण कर्ता के रूप में देखना, आदि ही है।

धार्मिक कर्मकाण्डों को समारोह पूर्वक करने में वाह्या-डम्बर बहुत बढ़ा चढ़ा होता है, कथा, वार्ता, होम, पाठ, पूजन, ब्रह्मभोज, कीर्तन, उत्सव, त्यौहार, संस्कार, जुलूस यह सब धूम धाम के साथ होते हैं, इनके समारोह में बाहरी काम धाम बहुत बढ़ता है, उसे बढ़ाने की खासतौर से धार्मिक व्यवस्था होती है। विवाह संस्कार यदि चाहें तो दस पाँच मिनट में हो सकता है

पर उसके अन्तर्गत अनेक उपसंस्कारों का खटराग होता है, सप्ताह दो सप्ताह उस धूम धाम में लग जाते हैं, देखने में यह सब निरर्थक मालूम होता है पर आध्यात्म दृष्टि से इनमें उपयोगिता भरी हुई है, गंधर्व विवाह उतने टिकाऊ और विश्वासनीय नहीं समझे जाते जितने कि धूम धाम वाले विवाह। कारण यह है कि वर वधू दोनों के ऊपर उस धूम धाम के कारण ऐसे संस्कार जमते हैं कि वे अपने को एक अटूट बंधन में बँधा हुआ अनुभव करते हैं और जीवन भर उस बंधन को निबाहने की कोशिश करते हैं, जिन देशों में रास्ता चलते फार्म पर दस्तखत होकर विवाह होजाते हैं वहां उनके टूटने में भी पन्द्रह मिनट नहीं लगते। इसी प्रकार अन्य धार्मिक कर्मकाण्डों की धूम धाम से एक ऐसी अदृश्य छाप मनके ऊपर बैठती है कि उनके करने से मनुष्य अपने को धर्मात्मा अनुभव करने लगताहै, अपने बारे में अच्छी धारणा निर्माण करना, धर्मके मार्ग में आस्था दिलचस्पी बढ़ाना ही इन कर्मकाण्डों का प्रयोजन है। यद्यपि पूजा पत्री स्वयं कोई धर्म नहीं है पर उनके द्वारा धार्मिक पथ की ओर प्रगति करने में सहायता अवश्य मिलती है। समारोह की धूम धाम से एक प्रकार का 'स्व संमोहन' होता है, अपने आप अपने ऊपर मैस्मरेजम करने की पद्धति के अनुसार इन कर्मकाण्डों द्वारा अपने विश्वासों का निर्माण होता है और वे विश्वास जीवन को उन्नति एवं आनंद की दिशा में ले जाते हैं।

विचारों के प्रकरण में यह बताया जा चुका है कि विचार एक मूर्तिमान पदार्थ है, उसे यंत्रों की सहायता से भली प्रकार परखा जा सकता है, उसका हलकापन और भारीपन तोला जा सकता है कितना विद्युत तेज उनके अन्दर है यह परीक्षा की जा सकती है। ठीक इसी प्रकार विश्वास भी ठोस तत्व है, विचार भाप रूप से उड़ते रहने वाला पदार्थ है पर विश्वास सजीव होते

हुए भी धातु की तरह एक स्थानीय, ठोस, घन, शक्ति केन्द्र है, सूर्य की साधारण किरणें चारों तरफ फैली रहती हैं पर आतिशी शीशे द्वारा उनको जब एक स्थान पर एकत्रित किया जाता है तो उससे अग्नि की चिनगानियां पैदा होजाती हैं, तालाबों और नदियों में से करोड़ों मन भाप प्रतिदिन उड़ती रहती है पर थोड़े से पानी की भाप को जब एक स्थान पर घनीभूत करदिया जाता है तो उसकी शक्ति से रेलगाड़ी जैसे भारी भारी यंत्र चलने लगते हैं, वैज्ञानिकों ने इस युग में लाखों प्रकार की मशीनें बना डाली हैं, यह बड़े बड़े उपयोगी काम करती हैं, यह मशीनें वैसे तो निर्जीव हैं पर बिजली या वाष्प इंजन की शक्ति की प्रेरणा मिलते ही धड़ाधड़ चलने लगती हैं। इन मशीनों में काम करने की इतनी शक्ति होती है जितनी कि उनके चलाने या बनाने में भी नहीं होती, हवाई जहाज बड़ी तेज चाल से कई मील ऊँचाई पर उड़ता है पर उसका ड्राइवर, बनाने वाला या आविष्कार अपने आपको दसगज ऊँचा भी नहीं उड़ा सकता। मशीन के द्वारा एक आदमी अपनी शक्ति की अपेक्षा पचासों गुना अधिक काम करता है।

दृश्य जगत में जिस प्रकार मशीनें काम करती हैं उसी प्रकार अदृश्य जगत में भी उनका अस्तित्व मौजूद है। योग के आठ अंगों में छटवें और सातवें अंग का नाम धारणा तथा ध्यान है, किसी वस्तु की एकाग्रता पूर्वक मनमें धारणा करने से प्रयत्न पूर्वक शान्त चित्त द्वारा ध्यान् करने से उस वस्तु की एक मानसिक प्रतिमा तैयार होती है, विश्वास की दृढ़ता द्वारा इस प्रतिमा को प्रेरणा मिलती है और वह अपना काम करने लगती है। तान्त्रिक साधनाओं में भूत, पिशाच, छाया पुरुष, भैरव, भवानी आदि को वश में करने का विधान है, बहुत से व्यक्तियों को देवी देवता सिद्ध होते हैं वे उनके द्वारा आश्चर्यजनक

अलौकिक काम पूरे कराते हैं, मारण, मोहन, वशीकरण, उचाटन जैसी क्रियाऐं उन सिद्ध किये हुये देवताओं द्वारा पूरी कराते हैं। यह सिद्ध किये हुए देवी देवता अपनी मानसिक संतानें हैं। धारणा और ध्यान द्वारा पहले उस देवता की आस्था कायम की जाती है, जिस कालीन ध्यान और अनुष्ठान से एक ठीक वैसी ही अदृश्य प्रतिमा बनकर तैयार हो जाती है साधक अपने देवता पर जितना ही अधिक विश्वास करता है उतनी ही प्रेरक शक्ति उस प्रतिमा को प्राप्त होती है और बिजली से चलने वाली मशीन की तरह विश्वास की शक्ति से वे ध्यान प्रतिमाऐं दौड़ धूप करने लगती हैं, कभी कभी तो वे ऐसे कार्य पूरे कर देती जो साधक के शरीर से नहीं हो सकते थे।

अघोरी, तान्त्रिक, हठयोगी, कापालिक, आमतौर से विचित्र और कठोर नियमों का पालन करते हैं, उनकी वेशभूषा खान पान, रहन सहन में कुछ भिन्नता रहती है, अपनी साधनाओं के बारे में वे बड़े पक्के होते हैं, उनमें कभी चूक नहीं करते, उन्हें भरसक गुप्त रखते हैं, यह साधनाऐं किन्हीं पुस्तकों के आधार पर नहीं वरन् गुरू परम्परा के अनुसार चलती यह तान्त्रिक साधना मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर देखा गया है कि तान्त्रिक लोग तार्किक प्रकृति के नहीं उनमें विश्वास का ही बाहुल्य रहता है। गुरू के वचन साधन प्रणाली पर, और देवता पर वे पूरा पक्का विश्वास हैं। देवता को हर घड़ी अपने साथ समझते हैं, बार बार ध्यान करते हैं, रहन सहनमें कुछ खास प्रतिबंध रखते हैं अपने साधकत्व का विशेष रूप से मान रहे, सिद्धि काल कठोर साधना ऐसी उग्र होती हैं कि उसे पूरा करने पर उनका विश्वास अनेक गुना बढ़ जाताहै। वे लोग अपनी हैं इतने यकीन रहते हैं कि सारी मानसिक शक्तियां

स्थान पर केन्द्री भूत होजातीहैं, वह ध्यान निर्मित प्रतिमा, केन्द्री भूत मानसिक शक्तियों का बल पाकर सजीव शक्तिशाली देवता की तरह कार्य करने लगती है।

तान्त्रिक अपनी साधना को प्रकट नहीं करते जिससे कि बहस में पड़ने का अवसर आने पावे, उन्हें पुस्तकें पढ़ना तार्किक लोगों के सम्पर्क में आना भी वर्जित होता है, नीच वेश भूषा में वे रहते हैं और नीच श्रेणी के अल्प शिक्षित लोगों से ही अपना संपर्क रखते हैं, कारण यह है कि यदि उन्हें पता चले कि हमारी सिद्ध देवी वास्तव में हमारी मानसिक संतान है, हमारे द्वारा निर्मित एक ध्यान प्रतिमा है तो उनकी श्रद्धा शिथिल होजायगी और उस शिथिलता के साथ ही देवता की शक्ति समाप्त होजायगी। योग और तंत्र में यही अन्तर है कि योग तो बुद्धि को परिमार्जित करके विवेक और शुद्ध अन्तःकरण के आधार पर चलता है पर तंत्र में केवल विश्वास की आवश्यकता है। बलिदान, हत्या, व्यभिचार, मद्यपान, अभक्ष भक्षण आदि त्याज्य कर्मों से साहसिकता बढ़ती है, उससे विश्वास में वृद्धि होती और विश्वास की प्रचंडता से सिद्ध देवता का कार्य भी बलवान होता है, इस प्रकार योगियों की भांति तान्त्रिक लोग सदाचार पर जोर नहीं देते वरन् क्रूर कर्मों को पसंद करते हैं। साधना क्षेत्रों में तंत्र विद्या को इसलिये निकृष्ट माना गया है कि एक तो उसका आधार क्रूर कर्म होने के कारण परलोक में सद्गति नहीं मिलती दूसरे उन विश्वासों को प्रचंड रखने के लिए गुप्त एवं उग्र साधन जारी रखने पड़ते हैं तीसरे अन्ध विश्वास पर निर्भय रहना पड़ता है, यदि तान्त्रिक की समझ में यह आजाय कि मेरा सिद्ध देवता और कुछ नहीं केवल 'मानस-पुत्र' तो उसकी श्रद्धा घट जायगी, श्रद्धा घटते ही सारी सिद्धि समाप्त हो जायगी। इसलिए गुरू लोग अपने शिष्यों को प्रयत्न

पूर्वक अंध विश्वास की सीमामें रखते हैं उससे बाहर नहीं
देते। यही कारण है कि नीचे दर्जे के अशिक्षित लोगही ता
होते हैं, शिक्षित, विवेकवान और तार्किकों को न तो यह
पसंद आता है और न इसमें उन्हें सफलता मिलती है।

योगियों की साधना भी धारणा और ध्यान के आधा
होती है पर उनका मार्ग दूसरा है, साधन एक ही होने प
उद्देश्य दोनों के बिलकुल भिन्न हैं। तान्त्रिक एक ऐसी
चाहते हैं जिसके द्वारा दूसरों को लाभ या हानि पहुंचा
जो शक्ति उन्हें प्राप्त होती हैं उसमें लाभ की संभावना थो
कम होती है हां हानि अवश्य पहुंच सकती है, किसी को
पहुंचाने में कोई अपना लाभ समझले यह बात दूसरी है।
मार्ग में अनाचार मूलक तथ्य अधिक है। वैसे शास्त्रीय
से तो सभी साधनाएं तंत्र कहलाती हैं, देवताओं को
करने वाले वाममार्गी और आत्मिक बल बढ़ाने वाले
मार्गी कहे जाते हैं, योगियों को दक्षिण मार्गी तांत्रिक भी
हैं। पर आज तंत्र बदनाम हो चुका है इसलिए योगी लोग
को दक्षिण मार्गी तान्त्रिक कहलाना पसंद नहीं करते, वे
साधना को स्वतंत्र 'योग मार्ग' का नाम देते हैं।

योग मार्ग पर चलने वाले आरंभ में यम नियम
अपनी शारीरिक और मानसिक पवित्रता बढ़ाते हैं आसन
प्राणायाम द्वारा शरीर और मनको स्वस्थ बनाते हैं।
और बाहर से स्वस्थ एवं पवित्र बनने की उनकी आधी
है इसके पश्चात् साधना आरंभ होतीहै। आधार भूमिको
निर्दोष एवं विवेक पूर्ण बना लेने के उपरांत मार्ग साफ हो
है, कोई नीच कोटि का प्रलोभन उन्हें आकर्षित नहीं
भौतिक चमत्कारों और सिद्धियां दिखाने की बाल बुद्धि से

कार्य नहीं होते वरन् आध्यात्मिक उन्नति की विवेक पूर्ण इच्छा से वे अपनी साधना जारी रखते हैं।

योग साधना एक प्रकार की आध्यात्मिक 'मल्ल विद्या' है। आपने देखा होगा कि पहलवानी करने वाले वैसे तो घर गृहस्थी के दूसरे काम भी करते हैं पर उनकी खास दिलचस्पी पहलवानी में होती है, दूध घी खाने में कितनी आर्थिक क्षति होती है इसकी वे जराभी परवाह नहीं करते, योगी लोग सांसारिक कार्यों को यथाशक्ति करते तो हैं पर उनकी प्रधान दिलचस्पी आत्मोन्नति में होती है, इसके लिए बहुत कुछ भौतिक त्याग करने पड़ते हैं, गरीबी का जीवन बिताना पड़ता है, इसकी जरा भी परवाह नहीं करते। पहलवान शक्ति संचय के लिए ब्रह्मचर्य से रहते हैं, हानिकारक भोज्य पदार्थों का परहेज करते हैं योगी भी इन्द्रियों का संयम करके बल की रक्षा करते हैं, गुरुकी आवश्यकता, कठोर साधना, नित्य का अभ्यास, अपने काम को संसार में सर्वोपरि समझना, खुला वायु का सेवन, चित्त में शान्ति आदि कार्यों को पहलवान और योगी एक समान पसंद करते हैं। पहलवान का शारीरिक बल बढ़ने से लोगोंमें उसका प्रभाव सम्मान, धाक, नेतृत्व जमता है इसी प्रकार योगीकी आत्मशक्ति बढ़ने से जनता में उसके प्रति श्रद्धा, विश्वास, आदर, भक्ति का आविर्भाव होता है। पहलवान अपनी शक्ति के विश्वास पर निर्भय रहता है योगी अपने बल की महत्ता का अनुभव करके निश्चिन्त रहता है। दोनों ही शक्ति के उपासक हैं, अपने अपने तरीके से, अपनी अपनी रुचि के अनुसार दोनों एक ही वस्तुको प्राप्त करते हैं किसी को शारीरिक बल पसंद है कोई आत्मिक बल में आनंद लेता है।

साधना का स्वाभाविक फल सिद्धि है। शारीरिक और दिमागी बल वाले लोग इस संसार में प्रचुर संपत्ति एकत्रित

करके शरीर सुख के अनेक साधन जुटा लेते हैं पैसे और बुद्धि के बल पर इच्छानुसार परिस्थिति पैदा करलेना उनके लिये बहुत ही आसान होता है। यह सिद्धियां ही तो हैं; मूर्ख एवं गरीब लोग जिस वस्तु को तरसते ही रहते हैं उसे चतुर और अमीर लोग पल भर में प्राप्त कर लेते हैं. बुद्धिमानों के लिए यह साधारण बात है पर नीचे दर्जे के लोग बड़े आदमियोंके सुख सौभाग्य को अपनी दृष्टि से किसी देवता का दिया हुआ बरदान समझते हों तो आश्चर्य नहीं। योगियों को आत्मिक बल की प्रचुरता के कारण अनेक सिद्धियां प्राप्त होजाती हैं। इनके लिये उन्हें कुछ अतिरिक्त प्रयत्न नहीं करना पड़ता, यौवन का आगमन होने पर दाढ़ी मूंछे अपने आप निकल आती हैं वैसे ही आत्मबल बढ़ने पर सिद्धियों का दर्शन होने लगता है।

हवा में उड़जाना, पानी में चलना, शरीर को अदृश्य या छोटा बड़ा बना लेना, इस प्रकार की सिद्धियों का वर्णन किन्हीं किन्हीं पुस्तकोंमें मिलता है पर आज उनका परिचय नहीं मिलता हम ऐसे सिद्धों की तलाश में दुरुह बन पर्वतों में मुद्दतों तक भ्रमण करते रहे हैं, भारतवर्ष के कोने कोने की खाक छानी है अनेक गुप्त-प्रकट, अज्ञात-बहु विख्यात योगियों से हम घनिष्ठता पूर्वक मिले हैं और उनकी तह तक पहुंचने का शक्ति भर प्रयत्न किया है, बीस वर्षों की निरंतर खोज में किंवदन्तियाँ तो अनेक सुनी पर ऐसे किसी सिद्ध पुरुष का साक्षात न हो पाया जो सचमुच उपरोक्त प्रकार की हवा में उड़ने आदि की सिद्धियों से युक्त हो, जैसे गृहस्थ बाजीगर अपनी चतुरता हस्तकौशल, कूट क्रिया द्वारा आश्चर्य जनक करतब दिखाते हैं वैसे ही चमत्कार दिखाते हुए हमने बहु विख्यात सिद्धों को पाया है। बहुत काल तक उनकी लंगोटी धोकर जब उनकी घनिष्टता प्राप्तकी तो जाना कि असल में कोई सिद्धि उनके पास कुछ भी नहीं है, कूट

क्रियाओं द्वारा लोगों को अपने चंगुलमें फँसा लेने मात्रकी कला में वे प्रवीण हैं। ऐसी दशा में इस संबंध में पाठकों से निश्चित रूप से हम कुछ कह नहीं सकते, यह पुस्तकें हमने निजी अनुभव के आधार पर लिखी हैं, जिस बात का हम स्वयं अनुभव न करलें उसके संबंध में पाठकों को कुछ विश्वास करने के लिये हम नहीं कह सकते। संभव है किसी पुस्तक में अतिशयोक्ति के साथ ऐसी सिद्धियों का होना लिख दिया हो, संभव है कोई स्वतंत्र विज्ञान उन सिद्धियों का प्राप्त करने का रहा हो जो अब लुप्त हो गया हो, संभव है ऐसी सिद्धियों वाले कहीं कोई अप्रकट योगी छिपे पड़े हों और संसार अभी तक उन्हें जान न सका हो। अज्ञात और अप्रत्यक्ष बातों के संबंध में चाहे जैसे अनुमान लगाये जा सकते हैं पर जब तक कुछ प्रत्यक्ष अनुभव न हो निश्चित रूप से कुछ कहना संभव नहीं। इसलिए पातंजलि योग दर्शन में जिन सिद्धियों का वर्णन है, उनके बारे में हम अपना कुछ निश्चित मत पाठकों के सामने प्रकट नहीं कर सकते।

आत्मिक बल बढ़ने से कई प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जिनका हर कोई प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है। (१) जिसकी दिलचस्पी आत्मिक क्षेत्र में होती है वह आत्मा को शरीर से भिन्न समझता है और सांसारिक पदार्थों की नश्वरता को भली भांति समझता है, इसलिए थोड़ी वस्तुएं प्राप्त होने पर भी बिना कुड़कुड़ाये काम चला लेता है और वियोग, हानि, नाश आदि के कारण दुखी नहीं होता तीन चौथाई दुख मानसिक होता है इनसे उसे सहजही छुटकारा मिल जाताहै। लोगदुख निवारणके लिए सारा जीवन खपा देते हैं फिर भी संतोष जनक स्थिति प्राप्त नहीं होती किन्तु आत्म ज्ञान से अनायास ही उसकी प्राप्ति हो जाती है यह पहली सिद्धि है (२) आत्मभाव, प्रेम, सद्-भाव ईमानदारी, सेवा, सहायता की बुद्धि जाग्रत होने से अपना

व्यवहार दूसरों के साथ बहुत ही उदार, विनम्र और मधुर हो
लगता है फल स्वरूप दूसरों का व्यवहार भी अपने साथ वैसा
ही मधुर-सहायता पूर्ण एवं सरल होता है, मित्रों, प्रेमियों, हित
चिन्तकों और प्रशंसकों की संख्या बढ़ने से मन प्रसन्नता और
प्रफुल्लता से भरा रहता है यह दूसरी सिद्धि है (३) आत्म
निरीक्षण द्वारा प्रवृत्तियों को पहचान कर उनसे बचने का प्रयत्न
करते रहने से मानसिक शान्ति बनी रहती है, पापों की बढ़ोतरी
नहीं होती, चित्त की शुद्धि होने से अन्तःकरण हलका रहता है
और नाना प्रकार के मानसिक विक्षेप उठकर घबराहट बेचैनी
उत्पन्न नहीं करते (४) चित्त की स्थिरता का शरीर पर भारी
प्रभाव पड़ता है, इन्द्रिय संयम और शान्त मस्तिष्क के कारण
शरीर निरोग और दीर्घजीवी रहता है यह चौथी सिद्धि है।
(५) सात्विक वृत्तियों के बढ़ने से धैर्य, साहस, स्थिरता दृढ़ता,
परिश्रम शीलता की वृद्धि होती है, इनसे असंख्य प्रकार की
योग्यताऐं बढ़ती हैं और कठिन काम भी बहुत आसान होजाते
हैं, सफलताऐं उसका चरण चुम्बन करती हैं यह पांचवीं सिद्धि
है (६) मनुष्यता की मात्रा बढ़जानेसे सब लोग उसका विश्वास
करते हैं, विश्वासी के पथ प्रदर्शन, नेतृत्व और कार्य क्रम को
लोग अपनाते हैं, उसके व्यक्तित्व की जमानत पर बड़ी से बड़ी
जोखिम उठाने और त्याग करने को लोग तैयार होजाते हैं, बिना
राज्य के शासन करना छटवीं सिद्धि है (७) बुद्धि परिमार्जित
होने के कारण दूसरों की मनोदशा समझने की योग्यता हो
जाती है, निर्मल बुद्धि पर स्वच्छ दर्पण की तरह दूसरों के मन
का चित्र स्पष्ट रूप से आजाता है। अन्य व्यक्तियों के मनोगत
भावों को समझकर उनके साथ तदनुकूल व्यवहार करने से
अपनी कार्य पद्धति सफल, लाभदायक, एवं हितकर होती है
यह सातवीं सिद्धि है (८) आत्मा की पवित्रता के कारण जीवन

मुक्ति मिलती है, ईश्वर प्राप्ति होती है, सत् चित् आनन्द पूर्ण स्थिति में निवास होता है, स्वर्ग और पुनर्जन्म मुट्ठी में रहते हैं यह आठवीं सिद्धि है। इन अष्ट सिद्धियों को आध्यात्म पथ के साधक अपनी साधना के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त करते हैं, जिस सुख की तलाश में बर्हिमुखी व्यक्ति घोर प्रयत्न करते हुए मारे मारे फिरते हैं फिर भी निराश रहते हैं उससे कई गुना सुख आध्यात्म साधक अनायास ही पाजाते हैं। अष्ट सिद्धि के प्रभाव से उनका जीवन हर घड़ी आनन्द से परिपूर्ण रहता है, दुख की छाया भी पास में नहीं फटकने पाती।

नव ऋद्धियां दूसरों के ऊपर प्रभाव करने के लिये हैं। पहलवान शारीरिक बल को बढ़ाकर स्वयं स्वास्थ्य जन्य सुख भोगता है, साथ ही उस बल के प्रभाव से दूसरों को हानि लाभ पहुंचाता है उसी प्रकार आत्मिक पहलवानों की ऋद्धियां, सिद्धियां हैं। सिद्धियों के बल से अपने आपको उन्नत, पवित्र, शान्त, निर्भय एवं आनंदित बनाता है और ऋद्धियों के बल से दूसरों को हानि लाभ पहुंचाता है। नौ ऋद्धियां निम्न प्रकार हैं-

(१) आत्म बल के साथ जो भावना दूसरे पर फेंकी जाती है वह बाण के समान शक्तिशाली होती है। उनके आशीर्वाद एवं शाप दोनों ही फल प्रद होते हैं। शाप और वरदान की प्राचीन कथाऐं झूँठी नहीं हैं, तपस्वी पुरुष सच्चे हृदय से किसी को आशीर्वाद दें तो वह व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है और शाप से आपत्ति में पड़ सकता है यह प्रथम ऋद्धि है (२) तपस्वी पुरुषों की मामूली चिकित्सा से असाध्य और कष्ट साध्य रोग दूर हो सकते हैं उनकी चिकित्सा में आध्यात्मिक अमृत मिला होने के कारण ऊंचे चिकित्सकों की अपेक्षा भी वे अधिक लाभ पहुंचा सकते हैं (३) साधकों के आस पास का वातावरण ऐसा पवित्र एवं प्रभावशाली होता है कि उसमें रहने से लोगों के

असाधारण परिवर्तन हो जाता है। बुरे और ढीले स्वभाव
व्यक्ति साधु पुरुषों की संगति में रहकर बहुत कुछ बदल जाते
उनकी शारीरिक और मानसिक बिजली इतनी तेज होती है
पास आने वाले व्यक्ति को अपने रंग में रंगे बिना अछूता न
छोड़ती यह तीसरी ऋद्धि है (४) मैस्मरेजम, हिप्नोटिज्म
काया प्रवेश आदि तरीकों से वे दूसरे निकटस्थ या दूरस्थ मनु
को संमोहित करके उसके अन्दर से मानसिक दोषों को
सकते हैं और उसके स्थान पर सद्गुणों के बीज उनके अन्त
में जमा सकते हैं यह चौथी ऋद्धि है (५) पूर्व कर्मों के
स्वरूप जिस प्रकार का भविष्य बन रहा है उसको पहले से
देख सकते हैं और उसके लिये तैयार रहने को पहले से
सावधान कर सकते हैं यह पांचवीं ऋद्धि है (६) भूतकाल
घटनाऐं और विचार धाराऐं नष्ट नहीं हो जाती वरन् ईथर
में अंकित रहती है आध्यात्म साधक किसी व्यक्ति का भूत
अपनी दिव्य दृष्टि से देख सकताहै और बिना पूछे किसी व्य
का परिचय जान सकता है यह छटवीं ऋद्धि है (७) योग साध
अपनी शक्ति, पुण्य, तपस्या, आयु, योग्यता का कुछ अंश दूस
को दान कर सकता है, तथा किसी के पाप और कष्टों को
भुगताने के लिए आत्म बल से अपने ऊपर ले सकता है
सातवीं ऋद्धि है (८) आत्म शक्ति से युक्त अपनी विच
धाराओं को अदृश्य रूपसे ऐसे प्रचंड प्रभाव के साथ बहा सक
है कि असंख्य जनता को उन विचारों के सामने झुकना प
आपने देखा होगा कि बक्की उपदेशक इधर उधर कतरनी
जीभ चलाते फिरते हैं पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं होत
किन्तु सच्चे महा पुरुष थोड़ा कहते हैं तो भी उनके प्रचंड विच
बड़े बड़े कठोर हृदयों में पार होजाते हैं उनका ऐसा तीव्र प्रभ
होता है कि उपेक्षा करना कठिन हो जाता है, आत्म शक्ति

महापुरुष अपने मनोबल से जनता के विचार पलट सकते हैं युगान्तर उपस्थित कर सकते हैं यह आठवीं ऋद्धि है (९) निराशों को आशान्वित, आलसियों को उद्यमी, मूर्खों को पंडित, रोने वालों को आनंदित, पापियों को पुण्यात्मा, दरिद्रों को ऐश्वर्यवान, अभावग्रस्तों को वैभवशाली बना देना, सोते हुओं को जगा देना, नर को नारायण के रूप में परिवर्तित कर देना, अर्ध मृतकों में प्राण फूँक कर सजीव कर देना यह नववीं ऋद्धि है।

अष्ट सिद्धि नव निद्धि से स्वभावतः योगी लोग सम्पन्न होते हैं, जिसकी जितनी जैसी साधना है उसे उसी मात्रा में ऋद्धि सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इनका दुरुपयोग करना बुरा है, सदुपयोग करने से आत्मिक बल वृद्धि होती है। जहां ऋद्धि सिद्धियों से बचने के लिए कहा गया है वहां उसका तात्पर्य इनका दुरुपयोग करने से है अथवा कौतूहल पूर्ण बाजीगरी के निरर्थक खेलों में रुचि न लेने से है। पहलवान को स्वभावतः शारीरिक बल प्राप्त है योगी को स्वभावतः ऋद्धि सिद्धियां मिलती हैं, यह प्राकृतिक क्रम है।
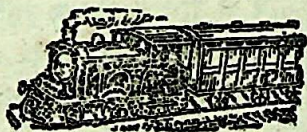
तीसरा पाठ

योगी की कसौटी–कर्म कौशल !

वर्तमान समय में देश की चतुर्मुखी अवनति के कारण योग विद्या भी बड़े निकृष्ट रूप में दिखाई दे रहा है। अज्ञान अविवेक स्वार्थपरता और मूढ़ता के कारण आध्यात्मवाद का असली तत्व लुप्त प्राय हो रहा है उसके स्थान पर आडंबर और अन्धविश्वास विराजमान होगया है। साधारण जनता आमतौर से योगी उसे समझती है जो घर गृहस्थी छोड़ चुका हो, भीख मांगे, बाल बढ़ाये हो, नंगे बदन रहे या भगवा कपड़े पहने, पूरा अकर्मण्य हो, दुनियां के किसी काम से कुछ मतलब न रखे, अपनी तथा दूसरे की कुछ परवाह न करे, शरीर को धूप में सुखाकर आग में जलाकर नाना प्रकार की यंत्रणाऐं दें, जप या ध्यान करने के अतिरिक्त और कुछ कार्य क्रम न हो। कोई व्यक्ति योगी है या नहीं, इसकी पहचान के लिए उपरोक्त लक्षणों की कसौटी पर उसकी परख की जाती है।

इस कसौटी को पहचान कर मूर्ख, अशिक्षित, दुर्गुणी, आलसी, हरामखोर स्वभाव के नीच कुलोत्पन्न व्यक्ति जिन्हें शर्म और स्वाभिमान की जरा भी परवाह नहीं होती, साधु का वेष बना लेते हैं। असल में इनका ज्ञान और आत्मिक विकास मामूली काम काजी लोगों की अपेक्षा हजार दर्जे कम होता है, इसलिये अन्य मार्गों से उदर पूर्णा होना कठिन देखकर भिक्षा पर उतर आते हैं। इस देशमें ऋषियों के प्राचीन गौरव की छाप आर्य संतान के हृदय पर से अभी मिटी नहीं है इसलिए भिक्षुक

को खाली हाथ न लौटाने की मान्यता बनी हुई है जहां तक संभव होता है लोग भिखारी को कुछ न कुछ देते ही हैं, यदि भिखारी साधु वेषधारी है तब तो उसे दुहरा लाभ है, सामान्य भिखारी की अपेक्षा उसे अधिक भिक्षा मिल जाती है। मजदूरी के कठिन कर्म द्वारा वह जितना उपार्जन नहीं कर सकता था उससे कहीं अधिक उपार्जन वह बिना परिश्रम के कर लेता है, ऐसा लाभदायक व्यापार उन हरामखोरोंके लिए दूसरा क्या हो सकता है ? मनोनुकूल व्यापार पाकर वे पूर्णतः संतुष्ट रहते हैं यह कारण है कि सरकारी मर्दुम शुमारी के अनुसार इनकी संख्या छप्पनलाख से ऊपर पहुंच गई है। सत्तर आदमियों पीछे एक साधु की परतीं आती है।

इन छप्पनलाख में तलाश करने पर बहुत कम सच्चे साधु मिलेंगे। साधु की वास्तविक अर्थ साधना करने वाला, कर्तव्यनिष्ठ, श्रेष्ठ, सच्चा होता है। श्रेष्ठ पुरुषों का प्रधान धर्म परोपकार होता है, अपनी इच्छा और आवश्यकताओं को वे इसलिए कम करते हैं कि शक्तियों को अपने लिए खर्च न करके दूसरों के लिए लगावें। ईश्वरको सब प्राणियों में बैठा हुआ जो व्यक्ति देखता है उसके लिए लोक सेवाही ईश्वर सेवा होसकती है, साधु पुरुषों को सदैव एक ही काम रहा है—जनता का पथ प्रदर्शन करना, लोगों को सन्मार्ग पर लेजाना, पतन से उत्थान की ओर प्रेरणा करना, विश्व में अनीत न बढ़ने देना, अज्ञान को हटाकर ज्ञान का प्रकाश करना। प्राचीन समय में ज्ञान वृद्ध, परमार्थी, तपस्वी, आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति सन्यास के महान उत्तरदायित्व को अपने शिर पर लेते थे। उनके आत्मबल के प्रभाव से उत्तम विचार धाराऐं प्रवाहित होती थी, कुपथगामियों को रुकना पड़ता था, दधीचि की तरह परमार्थ के लिए अस्थि-दान करने में उन्हें प्रसन्नता ही होती थी। आज कहां हैं ऐसे

योगी ? यदि होते तो देश का इतना पतन क्यों होता ? अविद्या और अन्धविश्वासों के चंगुल में आर्य जाति क्यों जकड़ जाती ? दासता का यह दुर्दिन क्यों देखना पड़ता ?

मुक्ति, ईश्वर प्राप्ति, स्वर्ग का हीनवृत्ति वालों ने अपनी दीन दशा के अनुरूप ही अर्थ किया है। खयाल किया जाता है कि कहीं बहुत दूर ऊपर आकाश में ईश्वर विराजमान है, उसके रहने का नगर बहुमूल्य वस्तुओं से बहुत ही सुन्दर बना हुआ है, किसी बड़े भारी अमीर या राजा महाराजा की तरह सुनहरी मसंदों के सहारे ईश्वर बैठा रहता है, मुक्ति मिलने पर, या ईश्वर की प्राप्ति होने पर हम उसी राज महल में पहुंच जायेंगे, बड़े बड़े सुन्दर बाग बगीचों की सैर करेंगे, बढ़िया बढ़िया स्वादिष्ट भोजन राज महल के रसोई घर में कर लिया करेंगे। आराम के लिये बढ़िया पलंग और तोषक तकिये मिलेंगे, ईश्वर के नौकर चाकर हमारी खिदमत बजाया करेंगे, सब प्रकार का मौज मजा रहेगा। अप्सराओं के नृत्य देखेंगे, जिस चीज की जरूरत होगी उसे ईश्वर से मांग लिया करेंगे, महनत जरा भी न करनी पड़ेगी, खूब गुलछर्रें उड़ाने को मिलेंगे। यह कल्पनाएं अपनी दीन हीन, अभाव ग्रस्त दशा की सूचक हैं, भूखे को स्वप्न में रोटी दिखाई पड़ती हैं इसी प्रकार उद्योग, ज्ञान और कर्मनिष्ठा के अभाव में सब प्रकार के सुखों से वंचित, दाने दाने को मुहताज लोग काल्पनिक जगत में अपनी इच्छाएं पूरी करने का स्वप्न देखा करते हैं। कदाचित यह स्वप्न सत्य हों और वास्तव में ही योगी बनने से इतनी राजसी संपदाएं मिलती हों, तो इसके लिए उन्हें अपना भार दूसरों पर डालने का कोई अधिकार नहीं है। आप अपने लिए एक बढ़िया जायदाद खरीदना चाहते हों तो उसके लिए धन भी स्वयं ही कमाइए. दूसरों को इस लिए दुहें, उन पर इसलिए कर लगावें कि हम बढ़िया महल खरीदेंगे तो यह न्याय

संगत बात नहीं है, जिस कार्य का बदला लोगों को वापिस मिले उसीके लिये दान मांगा जा सकता है, कोई स्वर्ग की राज संपदा मांगे और कोई उसके लिए अपनी खून की कमाई दे, इसका क्या तात्पर्य ?

ईश्वर सब प्राणियों में मौजूद है उनकी सेवा ही ईश्वर की सेवा है आत्मज्ञान ही मुक्ति और सद्वृत्तियों का होना ही स्वर्ग है। यह तीनों वस्तुऐं आंखों के सामने मौजूद हैं और कर्तव्य परायण होकर, परमार्थ रत होकर इन्हें प्राप्त किया जा सकता है। साधु सन्यासियों का दान एवं भिक्षा के ऊपर जीवन निर्वाह करना इसलिए धर्म संगत नहीं ठहराया गया है कि वे अपने निजी इहलौकिक या पारलौकिक स्वार्थ साधना में लगे हुए हैं वरन् इसलिए उचित ठहराया गया है उस अन्न से शरीर रक्षा करते हैं और शरीर की सारी शक्तियों को लोक हित में लगा देते हैं। जो साधु लोक सेवा में दिन रात प्रवृत्त नहीं रहते, जनता का पथ प्रदर्शन नहीं करते, दधीचि की तरह लोक कल्याण के अपनी हड्डियां समर्पित नहीं करते, उन्हें भिक्षा का अन्न ग्रहण करने का बिलकुल अधिकार नहीं हैं। कुपात्र को दिया हुआ दान, देने वाले का हित नहीं करता वरन् अनीति में सहायक होने के कारण उसे उलटा ले डूबता है।

इस अन्धकार के युग में हरामखोरों को मुफ्त का माल चरने का एक अच्छा बहाना 'योग' मिल गया। अपने को योगी कहते ही भोजन के साथ बड़प्पन भी मिलने लगा 'महात्मा' की सर्वोच्च पदवी से अनायास ही विभूषित होगये, भला इससे अधिक उन्हें और क्या चाहिए ? इस पवित्र क्षेत्र में आश्चर्य-जनक संख्या में कुपात्र घुस पड़े, एक मछली तालाब को गन्दा कर देती है छप्पनलाख मगर मच्छों के द्वन्द के कारण उस तालाब की जो दुर्गति हो सकती है वही आज ब्रह्मविद्या की

हो रही है। इस चिमटा पलटन द्वारा अनेक प्रकार के भ्रम और अन्ध विश्वासों की सृष्टि कर डाली जिसके कारण योग का वास्तविक स्वरूप भी लोगों की दृष्टि से ओझल होगया।

आज साधु सेवा इसलिए नहीं की जाती कि उससे आत्मोन्नति हो, जीवन सुख शान्ति युक्त हो, वरन् योगी बाबाजियों की तलाश इसलिए की जाती है कि दड़ा, सट्टा, फीचर, तेजी मंदी, लाटरी आदि उनसे मालूम हो जाय, आजकल साधु और उनके शिष्यों में यही संबंध प्रधान, रूप से चल रहा है। जिस साधु ने जरा आडम्बर बढ़ाया बस उसीके पीछे "छप्पन करोड़ की चौथाई" मुफ्त में हथियाने की लालसा वाली भक्त मण्डली पीछे लग लेती है। 'महात्माजी' अंट संट शब्द बकते रहते हैं भक्त लोग उन्हीं के आधार पर जुआ खेलते हैं, सौ में से एक दो का तीर तुक्का लग जाता है, जिसे फायदा हुआ वह प्रशंसा के पुल बाँधता है, जिसका चला गया वह अपना भाग्य कोस कर चुप हो जाता है। कहावत है कि 'उल्लू का माल मसखरा खाय' हराम का माल पाने की इच्छावाले भक्तों की यह मुफ्तखोरे बाबाजी अच्छी तरह हजामत बनाते हैं। इसी प्रकार भूत पलीत, गण्डा ताबीज, औलाद, मुकद्मा, रोजगार, बीमारी चोरी गया माल, जमीन में गड़ा धन, नोट दूने करना, सोना बनाना, वशीकरण, हाजरात, ईश्वर का दर्श स्पर्श शत्रु नाश आदि नाना प्रकार की कामना याचना इन लोगों से की जाती है और वे भी पूरे मसखरे होते हैं गांजा, भांग, रबड़ी, मिठाई, कमण्डल कम्बल, भोग भंडारा के नाम पर जितना कुछ पल्ले पड़े ऐंठ कर भक्त के हाथ में चुटकी भर भभूत थमा देते हैं।

उपरोक्त पंक्तियों को पढ़कर कोई महानुभाव ऐसा न समझे कि हम साधु संतों की अवज्ञा करते हैं, या महात्माओं के आशीर्वाद से सांसारिक लाभ प्राप्त होनो असंभव समझते हैं।

ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। हमारे ऊपर अनेक सच्चे योगियों की कृपा है वे अपने वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर हमारी टूटी कुटिया को अपनी चरण रज से अकसर पवित्र किया करते हैं, हमारे यहां साधु सन्यासी, यती योगी बहुधा कृपा करते हैं और उनको दुर्गम निवास स्थानों में जाकर महीनों उनकी शीतल गोदी में खेलने का स्वर्गीय सौभाग्य प्राप्त करते हैं, भजन कीर्तन हमारे जीवन का प्राण है, योग पथ के हम स्वयं एक विनम्र जिज्ञासु हैं और अतीतकाल से इस दशा में मंजिलें पार करते हुए चले आ रहे हैं। योग द्वारा ही हम भारत का और भारतीयों का पुनरुत्थान देखते हैं, महान आत्मा वाले महापुरुष ही नवयुग निर्माण के महान् कार्यको ईश्वर के आदेशानुसार अपने कंधों पर ले रहे हैं। आध्यात्मवाद का व्यापक प्रचार करने का एक महान कर्तव्य अपने दुर्बल कंधों पर हम स्वयं भी उठाये हुए हैं ऐसी दशा में योगीजनों की महत्ता को रत्ती भर भी कम करने का प्रयास हमारे द्वारा होना संभव नहीं है। आध्यात्मिक महा पुरुषों की महिमा घटाने वाला एक शब्द भी हमारी वाणी या लेखनी से कभी नहीं निकल सकता।

पूजनीय और प्रातस्मरणीय योगीजन जिनकी चरण रज से हम अपने मस्तक को पवित्र करते रहते हैं, हमारी अपेक्षा बीसियों गुना अधिक विरोध वर्तमान साधु नाम धारी शूद्रों का किया करते हैं, एक बार तो एक चोटी के महापुरुष इस दुष्टता का वर्णन करते करते फूट फूट कर रोने लगे, उनका कहना था कि भारत की सर्व श्रेष्ठ महत्ता और विशेषता को इस प्रकार बदनाम, तिरष्कृत और अविश्वासनीय बनाने वाले यह लोग ईश्वर द्रोही और आत्म द्रोही हैं। इनकी आसुरी माया का भंडा फोड़ किये बिना अन्धकार का आवरण न हटेगा और सच्चे योगियों की वास्तविकता को पहचानना सर्व साधारण के लिये

संभव न होगा। फोड़े को अच्छा करने के लिये उसे चीरना पड़ता है और फिर मरहम लगाना पड़ता है, बगीचे में पानी लगाना पड़ता है और कटीली झाड़ियों को साफ करना पड़ता है, आध्यात्मवाद की सुगन्धित फुलवारी लगाने के लिये मायाचारियों की करतूतों का विरोध किये बिना काम नहीं चल सकता, झूंठ को हटाये बिना सत्य की स्थापना नहीं हो सकती। सर्व साधारण को सत्य असत्य की परीक्षा करने के लिये प्रेरणा देना, हमारे विरोध का केवल इतना तात्पर्य है। सच्चे, स्वार्थ त्यागी, लोक सेवा, परोपकारी, परमार्थ परायण महात्माओं रूपी रत्नों को कांच के टुकड़ों के ढेर में से प्रथक करना ही होगा।

योग और योगियों का वास्तविक स्वरूप जानने की इच्छा करने वाले जिज्ञासुओं को जानना चाहिये कि योग एक आध्यात्मिक मल्ल विद्या है जिसका सीखना उसी प्रकार आवश्यक है जैसे कि शरीर को स्वस्थ बनाना। यह सुगम है, सुलभ है और हर व्यक्ति के द्वारा व्यवहृत होने योग्य है। रोग निवारण और स्वास्थ्य वृद्धि यह दो विधान आरोग्य शास्त्र के हैं इसी प्रकार योग शास्त्र के दो भाग हैं बुद्धि परिमार्जन और साधना। इन आठ पुस्तकों में बुद्धि परिमार्जन विधान है, मैं क्या हूँ पुस्तक में आत्मोन्नति ध्यान साधना का तथा "ईश्वर कौन है ?........." पुस्तक के 'सोऽहम् साधना' प्रकरण में ईश्वर प्राप्ति की प्राण साधना है, काम काजी और मध्यवृत्ति के लोगों के लिए यह दो साधनाऐं बहुत उत्तम हैं, अन्य शिक्षकों द्वारा बताई हुई अन्य शिक्षाओं से भी विचार और विश्वासों को सात्विक बनाया जा सकता है। योग साधना से अष्ट सिद्धि और नव निद्धियाँ प्राप्त होती हैं, इसके अतिरिक्त अन्य अतिशयोक्ति पूर्ण. किम्वदंतियों के आधार पर, ईश्वरीय विधान विपरीत चमत्कारी सिद्धियों की आशा न करनी चाहिये

"अति लोभी कुछ नहीं पाता और ठगा जाता है" इस नीति वचन का इस अवसर पर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए।

सन्यास और योग दो प्रथक वस्तुऐं हैं, दोनों को एक साथ जोड़ देने की भूल कदापि न करनी चाहिए। तीन आश्रम को भुगतकर वृद्धावस्था में सन्यास ग्रहण किया जाता है किन्तु यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि योग के अंगों को ब्रह्मचर्य आश्रम में ही आरंभ कर दिया जाता है और ग्रहस्थ तथा वानप्रस्थ आश्रम में उस साधना की बराबर उन्नति करते जाते हैं। प्राचीन काल में योगाभ्यासी सन्यासी और ग्रहस्थ दोनों ही होते थे, जन संख्या की कमी के कारण थोड़ी थोड़ी झोंपड़ियों के गांव होते थे, आस पास काफी जंगल छूटे रहते थे, उष्ण आबहवा को देखते हुये नंगे रहने का चलन था, आज इन बातों को सन्यास का चिन्ह समझा जाता है पर वास्तव में यह उस समय का ग्रहस्थ जीवन ही था। वशिष्ठ जी जिन्होंने 'योग वशिष्ठ' लिखा, ग्रहस्थ थे, उनके पुत्रों को विश्वामित्र ने मार डाला ऐसी कथा महाभारत में मिलती है। अधिकांश योगी ऋषि ग्रहस्थ थे, उनके स्त्री पुत्रों का विस्तृत वर्णन मिलता है, राजा जनक सौ रानियों के होते हुये भी योगी थे, ब्रह्मविद्या की शिक्षा ग्रहण करने के लिये उनसे शुकदेव जैसे योगी पहुंचा करते थे। बहुत से योगी सन्यासी भी थे, पर योग साधना के लिए किसी आश्रम का प्रतिबन्ध नहीं था और न अब ही किसी ऐसे प्रतिबन्ध की आवश्यकता है।

गीता कहती है कि "कर्म की कुशलता योग है"। पातंजलि कहते हैं—"चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहते है"। कर्म की कुशलता और चित्त निरोध इन योग्यताओं को प्राप्त करना बालकपन से ही आवश्यक है। इनके लिये बुढ़्ढे होकर सन्यास लेने तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।

कर्म की कुशलता इस बात में है कि उसका विपरीत फल न निकले। मनुष्य इसलिये काम करता है कि उससे सुख मिले, आनन्द की अभिलाषा से प्रेरित होकर कर्म करने का कष्ट उठाने के लिये मनुष्य तैयार होताहै, कोई नहीं चाहता कि मैं जो काम करता हूँ उसका परिणाम दुखदायी हो, फिर यदि कर्म का फल दुख देने वाला हो, तो समझना चाहिए कि इसमें कुशलता का समावेश नहीं हुआ, मूर्खता, नासमझी, बेवकूफी इसमें रही अन्यथा इच्छा के विपरीत फल क्यों होता ? किसान गेहूँ बोता है तो उसके खेत में गेहूँ ही उपजता है यदि गेहूँ की जगह सरसों उपज पड़े तो समझना चाहिये कि किसान से कुछ भूल हुई है, कुशल किसान वह है जिसके खेत में इच्छित फसल उत्पन्न होती है। जब सुख की इच्छा से किया हुआ कर्म दुख-दायी फल लाता है तब भी ऐसा ही समझना चाहिये कि कहीं कुछ भूल हो रही है, गीता के मत से इस भूल को सुधार कर ठीक रीति से कुशलता पूर्वक कर्तव्य करना योग है।

कर्म करने की ठीक रीति यह है कि अत्यधिक लोभ, तृष्णात्मक फलाशा, स्वार्थ लिप्सा को छोड़कर हर एक काम को धर्म समझकर, पवित्र कर्तव्य समझकर, ईश्वरार्पण करते हुये करना चाहिये। फल में सुख ढूँढ़ने पर वह दूर हटता जाता है, किन्तु कर्तव्य पालन में सुख अनुभव किया जाय तो वह प्रत्येक घड़ी सामने उपस्थित रहता है। पुत्र का लालन पालन करने में यदि ऐसा सोचा जाय कि यह बड़ा होकर हमारी सेवा करेगा, धन कमाकर हमें देगा, हमें भोजन वस्त्र देगा, तो इस इच्छित फल का सुख प्राप्त करने के लिए पचास तीस वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब तक कि वह कमाने लायक न हो जाय। फिर कदा-चित ऐसा हुआ कि वह बेटा इच्छा के प्रतिकूल निकला, उसने सेवा न की, कमाई सुपुर्द न की, बहू को लेकर अलग होगया,

तो सारी आशाओं पर तुषार पात होगया, पच्चीस वर्ष से जिस सुख की आशा में बैठे थे वह धूलि में मिलगया और दुख, पछतावा, निराशा, कुढ़न ही हाथ रह गई। कदाचित वह बेटा कमाने योग्य होने पहले ही मर गया तो भी दिन रात शोक संताप में जलना खड़ा हो गया। यह दुख इसलिये हुये कि पुत्र पालन का कर्म करते समय उसके फल के संबंध में बड़ी बड़ी सुखदायक आशाएं बांधी गई थीं, वे आशाएं जितनी बढ़ी चढ़ी थी, टूटने पर उतना ही बढ़ा चढ़ा दुख हुआ। लड़कियों के मर जाने पर दुख कम होता है क्योंकि उनसे बहुत बड़ी आशाएं नहीं बांधी जातीं।

यदि कर्म करते समय फल से मिलने वाले सुख का काल्पनिक महल न खड़ा किया जाय तो उससे संयोगवश असफलता हो जाय तो भी दुख नहीं होता। इसलिए भगवान कृष्ण ने निष्काम कर्म को 'योग' कहा है, यही कर्म की कुशलता है। पुत्र पालनको अपना पुनीत कर्तव्य समझा जाय, एक प्राणी की निस्वार्थ सेवा का भाव रखा जाय, हमारे माता पिता ने जैसे हमें पाल पोस कर बड़ा किया था वैसे ही एक प्राणी की स्नेह सेवा करके कर्ज अदा करने का भाव रखा जाय, ईश्वर की दी हुई अमानत को व्याज समेत उसे वापिस देने का स्मरण रखा जाय, तो वह पुत्र पालन हो यज्ञ के समान पुण्य फल का देने वाला हो सकता है। पालन के समय जो त्याग, सेवा, कष्ट सहन, तप, करना पड़ता है उसमें पल पल पर आन्तरिक आनंद और संतोष मिलता है, प्रसन्नता बढ़ती है और आत्म बल की उन्नति होती चलती है। दो आदमी अपने अपने पुत्र का पालन करते हैं एक फल की आशा से पचास वर्ष प्रतीक्षा करता है और यदि परिणाम वैसा न निकला तो दुख से छाती पीटता है, दूसरा आदमी आशाओंके वैसे महल नहीं बनाता, वरन् वर्तमान

समय में जो त्याग, स्नेह और सेवा पूर्वक एक प्राणी का पालन कर रहा है उसे धर्म समझ कर अपनी धर्मपरायणता पर संतोष करता है उसके लिये हर घड़ी आनन्द ही आनन्द है। पहला आदमी जब कि पचीस वर्ष आशा लगाये बैठा रहा तब तक दूसरे आदमी ने अपनी कर्तव्य परायणताका इतना आनंद भुगत लिया जो बेटे की कमाई खाने की अपेक्षा हजारों गुना अधिक था। यदि पुत्र, इच्छा के प्रतिकूल निकलता है या मर जाता है तो फल की आशा वाले को दुख होगा, परन्तु सेवा भावी के लिये वैसी कोई बात नहीं है, उसने मोह ममता की उपासना नहीं की है इसलिये हानि का दुख भी क्यों होगा? पड़ोसी का पुत्र मरजाने पर अपने को इसलिये दुख नहीं होता कि उससे अपना कुछ स्वार्थ या ममत्व नहीं थी, ममता ही दुख की जननी है, निस्वार्थता के साथ शोक संताप का ठहरना नहीं हो सकता।

यही कर्म कौशल है। निष्काम योग का तात्पर्य यह नहीं है कि बिना सोचे विचारे हानि लाभ का विचार किये चाहे कुछ करने लग पड़ें और परिणाम का विचार करना छोड़दें, ऐसा तो कोई पागल ही कर सकता है। हर काम के हानि लाभ और बुरे भले परिणाम का खुब अच्छी तरह विचार करना चाहिए और फिर जो कार्य उपयोगी, उचित, ठहरे उसे धर्म कर्तव्य समझकर यज्ञ भावना से करते जाना चाहिये। घरेलू नित्य के कार्यों को कुटुम्ब पालन, शरीर रक्षा.व्यापार आदि साधारण जीवन निर्वाह कार्यों को यदि कर्तव्य भावना से, धर्म समझ कर, निस्वार्थता पूर्वक, किया जाय तो मामूली काम काज यज्ञ के समान शुभ और सुखद होजाते हैं। दृष्टिकोण के परिवर्तन मात्र से वही कार्य जो दूसरे को बंधन में बाँधने वाले और दुखदायी होते हैं आपके लिये इसलोक और परलोक में अक्षय सुख शान्ति देने

वाले हो सकते हैं यही कर्म योग का मर्म है, गीता में भगवान् ने इसी साधना का निर्देश किया है।

पातंजलि ने चित्त वृत्तियों के निरोध को योग बताया है—इसका तात्पर्य वासनाओं पर नियंत्रण करना है। मन के भीतरी भाग में सदैव देवासुर संग्राम होता रहता है, किसी कार्य के सामने आते ही उस विषय में पाप वासना अपना प्रस्ताव करती है और पुण्य भावना अपना। इस अवसर पर पाप की अपेक्षा करके पुण्य की बात मानना उसी मार्ग पर चलना यह चित्त का निरोध है। यदि किसी ने गुप्त रूपसे अपनी रुपयों की थैली आपके पास अमानत रखदी हो तो मनमें बैठा हुआ असुर उसे हजम करलेने का प्रस्ताव करेगा और देव का प्रस्ताव यह होगा कि जिसकी वस्तु उसे धर्म पूर्वक लौटा देनी चाहिये। इन दोनों प्रस्तावों में से किसी एक को स्वीकार करना आपकी मर्जी के ऊपर है। पातंजलि का कथन है कि असुर वृत्तियों के प्रस्तावों को अस्वीकार कर दीजिये उन्हें मानने से इनकार कर दीजिये, इनपाप प्रवृत्तियों पर, भोगेच्छाओं पर अंकुश रखिए उनका निरोध करते रहिए, यह चित्त वृत्तियों का निरोध है। हर घड़ी, हर बात में, हर विचार में, हर काम में, जो देवासुर संग्राम होता है, उसमें देवता का पक्ष ग्रहण कीजिये और असुर का दुत्कार दीजिये।

दूसरा तात्पर्य 'एकाग्रता' है। चित्त को निश्चित विषय में ही लगावे, इधर उधर न भटकने देने की साधना करने से मानसिक विद्युत शक्ति एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती है आतिशी शीशे से सूर्य की किरणें एकत्रित कर देने पर आग जलने लगती है इसी प्रकार चित्तको एकाग्र करके उसे जिधर लगा दिया जाता है उधर अद्भुत सफलता नजर आने लगती है, इसलिए एक स्थान पर प्रवृत्त रखना यह भी चित्तवृत्ति निरोधके अंतर्गत ही है।

चौथा पाठ

दार्शनिक मूल भुलैयां !

धर्म शास्त्र में ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जिनके संबंध में एक ही आचार्य परस्पर विरोधी बातें कहता है, विभिन्न पुस्तकों में यह मत भेद और भी उग्र होजाता है, मामूली पुस्तकों की बात छोड़िये निस्वार्थ तपस्वी विद्वानों के प्रामाणिक ग्रन्थों में जब एक मत दिखाई नहीं पड़ता तो जिज्ञासुको बड़ा आश्चर्य होता है और वह भ्रम में पड़ जाता है।

एक ही कार्य की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार की एक दूसरे से मेल न खाती हुई—प्रक्रियाऐं, बताई गई हैं, कोई कृष्ण को, कोई राम को, कोई शिव को, कोई दुर्गा को, कोई विष्णु को सृष्टि कर्ता जगतपति मानते हैं। तीर्थों का महात्म्य पढ़ेंगे तो हर एक तीर्थ को सब में बड़ा और सबसे अधिक पुण्य फल देने वाला लिखा है, देवताओं के भक्त अपने अपने देवता को सबसे अधिक बल वाला बताते हैं, हर मंत्रकी महिमा सर्वोपरि बताई जातीहै, इसी प्रकार हर दर्शन शास्त्री अपने सिद्धान्तों को ऊँचा बताताहै, हर सम्प्रदाय अपनी उपयोगिता सबसे आगे रखता हैं। व्रत उपवास, पूजा अर्चा आदि धार्मिक कर्मकाण्डों का भी यही हाल है—हर एक अपनी महिमा दूसरोंसे बढ़ीचढ़ी प्रकट करता है। इन सब बातों पर विचार करने से संदेह उत्पन्न होता है कि एक की बात पर विश्वास कर लिया जाय, उसके मत को सही मान लिया जाय तो अन्य सब झूंठे ठहरते हैं, सब की परस्पर विरोधी बातों को सत्य माना नहीं जा सकता।

इस प्रकार यदि किसी एक आचार्य या ग्रन्थ को सत्य मानाजाय तो अन्यों को मिथ्याचारी झूँठा ठहराना पड़ता है। जब सौ में से निन्यानवे झूंठे हैं तो उस एक का भी क्या पता है, संभव है वह भी ऐसा ही हो, इस प्रकार धर्म सिद्धान्तों के विषय में एक अविश्वास, असंतोष और भ्रम उत्पन्न होता है।

यह गुत्थी देखने मात्र की है, मूल तथ्य पर विचार करने से उलझन का भली प्रकार निराकरण हो जाता है। मानवीय मनोविज्ञान के मर्मज्ञ आचार्यों ने लोगों की रुचि भिन्नता और मनोभूमि के असाधारण अन्तर को भली प्रकार ध्यान में रखकर देश काल और पात्र के अनुसार विभिन्न प्रक्रियाऐं निर्मित की हैं, रोगी की प्रकृति और रोगकी मर्यादा देखकर चतुर चिकित्सक पृथक पृथक औषधियों का प्रयोग करते हैं। यदि सभी रोगियों के शरीर एक से होते और सबको एक ही मर्ज हुआ करता तो एक औषधि से भी काम चल सकता था किन्तु जब एकता नहीं है तो औषधियों में भी अनेकता होनी ही चाहिये, अपने स्थान पर वे सभी सर्वोच्च हैं, फोड़े के लिये मरहम का महत्व सर्वोपरि है और गठिया के लिये नारायण तेल का। मरहम की महिमा भी ठीक है और नारायण तेल का गुण भी कम नहीं है, इन दोनों की तुलना आपस में करके नीचा ऊँचा ठहराना उचित नहीं है। लोगों की मनोभूमि के अनुसार विभिन्न सिद्धान्त, विश्वास और नियमोपनियम बनाये गये हैं, समय के प्रभाव से जन समाज की मनोभूमि में परिवर्तन होता है और नई नई समस्या सामने आती हैं तब तत्वदर्शियों को तदनुकूल व्यवस्था का निर्माण करना पड़ता है। देश, काल, पात्र के भेद से अपनी अपनी मति के अनुसार विद्वानों से विभिन्न विधियां निर्धारित की हैं देखने में एक दूसरे से भिन्न हैं पर एक ही सत्य को विभिन्न रूपों में विभिन्न अवसरों पर प्रकट किया गया है। सूर्य एक और

अपरिवर्तन शील है तो भी प्रातः मध्यान्ह, संध्याकाल में उसका रंग रूप बदलता रहता है, आध्यात्म तत्व सनातन हैं तो भी परिस्थितियों के कारण उनमें अंतर आता रहता है, इस भिन्नता को देखकर भ्रम में पड़ने की कोई बात नहीं है।

सभी नदियां अपने अपने मार्गों से एक ही समुद्र में पहुंचती हैं, इसी प्रकार पवित्र भाव से, धर्म कामनासे किये गये निर्दोष कर्म काण्ड धर्म लाभ कराने वाले होते हैं। असल में फल उस भावना के अनुसार मिलता है जिससे प्रेरित होकर वह क्रिया की गई है। रबड़ की गेंद दीवार पर फेंक कर मारें तो वह टक्कर खाकर अपने पास ही वापिस लौट आती है इसी प्रकार यदि धर्म भावना से प्रेरित होकर कोई कार्य किया गया है तो उसका परिणाम अच्छा ही होगा, महत्व उस कर्मकाण्ड का नहीं है वरन् भावना का है, इसलिए हर एक धार्मिक विधान सर्वोच्च है यदि उसे सच्ची भावना से किया जाय। शास्त्रकारों ने विश्वास को फलदायक बताया है यदि अमुक प्रक्रिया पर किसी की निश्चल श्रद्धा है तो उसके लिए उसी से धर्म फल उपलब्ध हो जायगा।

विश्वास को अधिक दृढ़ करने के लिए महात्म्योंके वर्णन में यदि कुछ अत्युक्ति से काम लिया गया हो तो इसमें कुछ दोष नहीं है। क्योंकि 'क्या सत्य क्या असत्य'? इस समस्या का निराकरण करते हुए व्यासजी ने कहा है जिसमें दूसरोंका हित होता है वही सत्य है, इसी प्रकार पातंजलि ने लोक कल्याण कारक, मन सुख वर्धक बात को सत्य कहा है। वास्तव में सत्य क्या है इसका अभी तक ठीक ठीक निर्णय नहीं होसका, वेदान्त तो प्रत्यक्ष जगत तक को मिथ्या कहता है, एक समयकी बात दूसरे समय में मिथ्या ठहरती है, देखते समय जो स्वप्न बिलकुल सत्य मालूम पड़ता है जगने पर वही असत्य होजाता है, इसी

प्रकार अनेक सिद्धान्त, धर्म आदेश, कानून, व्यवस्था जो एक समय बिलकुल निर्दोष—सत्य—मालूम पड़ते थे, आगे चलकर वे बहुत ही दोष पूर्ण और अनावश्यक सिद्ध होते हैं, दूध पीना लाभदायक है यह बात एक समय एक व्यक्ति के लिये सत्य है किन्तु दूसरे समय दूसरे व्यक्ति के लिये वह हानिकारक हो सकता है। सत्य का लक्षण यह है कि वह हर समय एक सा रहता है, ऐसी दशा में मानव जाति अभी सत्य की खोज कर रही है उसे यह पता अभी पूर्ण रूप से नहीं चला है कि वास्तव में सत्य क्या है। इस लिये लोक कल्याण की दृष्टि से, लोगों को उत्तम मार्ग पर ले जानेके लिये यदि कुछ अत्युक्ति पूर्ण कहा जाता है तो उसमें दोष नहीं आता, इस दृष्टि से यदि धार्मिक आचार्यों ने किन्हीं धर्म क्रियाओं का ऐसा महात्म्य वर्णन किया है जो वैज्ञानिक परीक्षण से ठीक नहीं बैठता तो भी उन व्यवस्थापकों को झूँठा नहीं कहा जा सकता। झूँठ वह है जो हानिकर हो, जिसके कारण लोग पतन की ओर चलें। अश्लील,गन्दी,निर्लज्ज कामुकता पूर्ण कथाऐं वर्णन करना झूँठ के तुल्य पाप है चाहे वे बिलकुल सत्य ही क्यों न हों।

हर एक सिद्धांत का निर्माण एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया गया है, उसका एक पहलू ही काम में आता है। यदि उस सिद्धान्त का उपयोग विपरीत कार्य के लिये किया जाय या अंधेरे अनावश्यक पहलू को अपना लिया जाय तो अनर्थ हो सकता है, वह अमृत सा लाभदायक सिद्धान्त विष के समान घातक परिणाम उपस्थित कर सकता है। जैसे 'भाग्य वाद' इस लिए है कि अज्ञात् कारणों से जो आकस्मिक अवसर जीवन में उपस्थित होते रहते हैं उन अपवादों के भ्रम में पड़कर मनुष्य किसी गलत परिणाम पर न पहुंच जाय। प्रयत्न करते हुए भी असफलता और प्रयत्न न करने पर भी सफलता मिलने के थोड़े

बहुत अवसर हर एक के जीवन में आते रहते हैं, यद्यपि ऐसी विपरीत घटनाऐं बहुत ही कम, अपवाद स्वरूप, कभी कभी होती हैं तो भी उनके अस्तित्वसे इनकार नहीं किया जा सकता, करोड़ों वर्ष से मनुष्य जाति यह खोजकर रही है कि ऐसा क्यों होता है, पर अभी तक कुछ ठीक ठीक पता नहीं चल सका है ऐसी दशा में प्रयत्न करने पर भी असफलता मिलने पर जो मानसिक वेदना उत्पन्न होती है उसे शान्त करने के लिए 'भाग्य' 'ईश्वर इच्छा' आदि की मान्यता प्रचलित की गई है। दुखों में धैर्य धारण करना—यही इन सिद्धान्तों का ठीक उपयोग है। पर यदि कोई दूसरे पहलू को काम में लावे और भाग्य के भरोसे रहकर कर्तव्य पालन करना छोड़दे तो यह बड़ा अनर्थकर होगा, इससे भारी हानि होगी, जो सिद्धान्त जिस निमित्त, जिस अवसर पर, जितने अंशों में, प्रयोग करने के लिये बना है उसका उपयोग उसी रूप में करना चाहिए।

आज संतोष, वैराग्य, क्षमा, अहिंसा, त्याग, संयम, आदि सिद्धान्तों के अन्धकार पूर्ण, अनावश्यक पहलू को अपनी दुर्बुद्धि के कारण लोग पकड़ बैठते हैं फल स्वरूप दीनता, दासता, दुर्बलता, दरिद्रता के चंगुल में फँस जाते हैं। उपरोक्त स्वर्णिम सिद्धान्त जिन अवसरों पर जिस रूपमें काममें लाये जानेके लिए निर्मित किये गये हैं उस मर्मको समझना चाहिए और तब यथा समय इनका उपयोग करना चाहिये आज का अन्न पासमें होने पर संतोष कर लेना कल का प्रबंध न करना, कंधे पर रखी हुई जिम्मेदारी को पालन करने में आना कानी करने के लिए वैराग्य का सहारा लेना, अत्याचारी के डर के मारे जब धोती बिगड़ जाय तब अपनी कायरता को क्षमा बताना, सिंह सर्प, गंदगी के कीटाणु आदि हानिकर जीवों को अहिंसा के नाम पर बलवान बनाना, त्यागके नाम पर जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं

के वंचित रहजाना, संयम के नाम पर रोगोत्पादक आचरण करना यह सब उन पुनीत सिद्धान्तों का दुरुपयोग है। स्मरण रखिये, हर एक सिद्धान्त एकाङ्गी है, उसका प्रयोजन और उपयोगिता का विधान भली प्रकार समझना चाहिये केवल शब्द के मोटे अर्थ पर अड़जाना बुद्धिमत्ता नहीं है। सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखने की शास्त्रीय आज्ञा है, पर यदि कोई गौ के स्थान पर शूकरी की पूजा करने लगे, गधे को 'पिता जी' कहने लगे, किसी से उधार लिया हुआ रुपया किसी को चुकावे अपनी और पराई स्त्री का अन्तर छोड़ दे इस तरह का विवेकहीन समदर्शीपन यदि काम में लाया जाय तो एक दिन भी काम न चलेगा। ऐसे समदर्शी को दूसरे दिन जेलखाने या पागलखाने पहुंचाना पड़ेगा।

ग्रन्थों में, सिद्धान्तों में, साधनों में, कर्मकाण्डों में, प्रथाओं में आपसी पर्याप्त मत भेद मौजूद हैं तो भी आपको भ्रममें पड़ने, विचलित होने, या किसी पर दोषारोपण करने को कुछ भी आवश्यकता नहीं है। भूल भुलैयों का तमाशा आपने कभी देखा होगा यह बुद्धि को तीव्र करने, ठीक मार्ग तलाश करने के लिये है, दार्शनिक विद्वानों और महापुरुषों ने विभिन्न अवसरों पर, विभिन्न लोगों के लिये, विभिन्न प्रकार के ग्रन्थों और सिद्धान्तों की रचना की है। यह सब दार्शनिक भूल भुलय्यां हैं, उनमें से अपनी वर्तमान सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल जिन प्राचीन व्यवस्थाओं को उचित समझें ग्रहण करलें अथवा उनमें यथा समय संशोधन करलें। किसी सिद्धान्त या ग्रन्थ के तथ्य के मूल मर्म को समझे बिना उसके मोटे शब्दार्थ पर अड़ बैठना अपनी उन्नति का पथ रुद्ध कर देना है।

दार्शनिक भूल भुलैयों में उलझिये मत, 'जैसा कुछ है सही इस आधार पर चलेंगे तो यह भूल भुलैया जीवन भर आपको

उलझाये रहेंगी आप उनमें ही चक्कर काटते रहेंगे और इच्छित स्थान तक न पहुंच सकेंगे। सेना का चक्रव्यूह बनाना और भेदना सेनापति लोग जानते थे और उसके आधार पर युद्ध में विजय प्राप्त करते थे। आप आध्यात्मिक शूरवीर हैं, दार्शनिक चक्रव्यूह को भेद कर सफलता प्राप्त करना यह आपका बुद्धि कौशल होना चाहिये। उन प्राचीन व्यवस्थाकारों पर कुड़कुड़ाइये मत, कि क्यों ऐसे उलझन भरे विचार जंजाल आपके लिये छोड़ गये हैं? उन्होंने सुपात्र और कुपात्र, बुद्धिमान और मूर्ख की छांट करने के लिये यह कसौटी छेड़ी है, यह आपके सामने एक चुनौती है कि अनेक विचार-व्यवस्थाओं की प्रदर्शिनी में से अपने काम के लिये उचित, काम चलाऊ और सामयिक वस्तु चुनलें और साबित करें कि हम बुद्धिमान हैं, पारखी और विवेकशील हैं।

जीवन के महान् तथ्य पर विचार कीजिये उसे उन्नतिशील, पवित्र, सुविधाजनक और आनन्दमय बनाने के लिये उन्हीं सिद्धान्तों और व्यवस्थों को स्वीकार कीजिये जो आज के स्थिति में उपयोगी हैं। हर पुरानी वस्तु न तो अच्छी है न हर नई चीज खराब, विवेक की तराजू पर ठीक तरह तौलिये और जो उपयोगी ठहरे उसे ही स्वीकार कीजिये। दार्शनिक भूल भुलैयां आपके विकाश को बन्द रखने वाली काल कोठरी सिद्ध न होनी चाहिये, उनका उद्देश्य तो आपको पारखी बनाना है, जिसे पग पग पर आने वाली समस्याओंको सूक्ष्म दृष्टिसे देखने, समझने और सुलझाने की क्षमता में वृद्धि कर सकें और जीवन को सुख सम्पन्न बना सकें।

❀ समाप्त ❀

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें।

यह बाजारू किताबें नहीं है, इनकी एक एक पंक्ति के पीछे गहरा अनुभव और अनुसंधान है। विनम्र शब्दों में हमारा दावा है कि इतना खोज पूर्ण अलभ्य साहित्य इतने स्वल्प मूल्य में अन्यत्र नहीं मिल सकता।

(१) मैं क्या हूं ? ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) पर काया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ? ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
(१५) ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ? ।=)
(१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ।=)
(१७) गहना कर्मणोगतिः ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश ।=)
(१९) पंचाध्यायी ॥)

व्यवहारिक जीवन की आध्यात्म शिक्षा।

आध्यात्मिकता, आनन्द मय जीवन बिताने की कला है। यदि आप इसी जीवन में स्वर्ग का प्रत्यक्ष आनन्द भोगने की इच्छा करते हैं तो निश्चय समझिए आप उसमें सफल हो सकते हैं। कैसे ? इस रहस्य को जानने के लिए इन पुस्तकों को पढ़िए। जीवन की व्यवहारिक सफलता के गुप्त मन्त्र इन पुस्तकों में मिलेंगे।

(२०) शक्ति संचय के पथ पर	।=)
(२१) आत्म गौरव की साधना	।=)
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान	।=)
(२३) मित्र भाव बढ़ाने की कला	।=)
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश	।=)
(२५) आगे बढ़ने की तैयारी	।=)
(२६) आध्यात्म धर्म का अवलम्बन	।=)
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन	।=)

कमीशन देना कतई बन्द है। इसलिए इसके लिए लिखा पढ़ी करना बिलकुल व्यर्थ है। हां, आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना लगा देते हैं। आठ से कम पुस्तकें लेने पर डाक खर्च ग्राहक के जिम्मे है।

पुस्तक मिलने का पता—

मैनेजर—'अखण्ड-ज्योति' कार्यालय, मथुरा।

मुद्रक – पं० हरचरन लाल शर्मा, पुष्पराज प्रिंटिंग वर्क्स, मथुरा।